

शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 7 अंक : 6 1 जनवरी 2015

(पौष-माघ, विक्रम संवत् 2071)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी
प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

नौरंग सहाय भारतीय 9460142051

प्रकाशकीय कार्यालय:

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001

दूरभाष: 9414040403, 9782873467

दिल्ली ब्यूरो :

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाष: 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at:

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/-

वार्षिक शुल्क 200/-

आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक

में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल
का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

हमारी शिक्षा विकासोन्मुखी हो – बजरंगी सिंह



11

मेरे विचार में कोई भी शिक्षा नीति बने उसे सफल बनाने के लिए हमें सही रुझान वाले अध्यापकों की जरूरत होगी। बिना अध्यापक और अध्यापिकाओं के ईमानदार सहयोग और कार्य के हम शिक्षा क्षेत्र में कोई बड़ी सफलता हासिल नहीं कर सकते हैं।

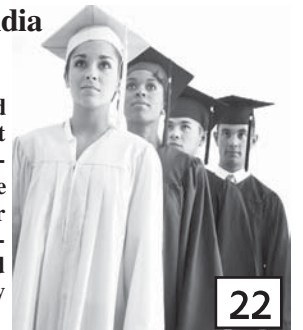
अनुक्रम

4. बदलते भारत की शिक्षानीति
 6. सर्वजन हिताय हो भारत की शिक्षानीति
 8. उच्चशिक्षा ग्रामाभिमुखी हो
 13. नैतिक शिक्षा और शिक्षा में नैतिकता
 15. सक्षम हो भारतीय भाषाओं के विद्यालय
 17. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में नये आयाम
 19. New Bharat, New Educatio
 24. भारतीय शिक्षा के स्वरूप की संकल्पना
 26. अभिनव शिक्षा की संकल्पना
 28. अमृत शिक्षा श्रद्धाविश्वासरूपिणो:
 30. ज्ञान आधारित हो हमारी शिक्षानीति
 32. पाठ्यक्रम का स्वरूप
 35. समर्थ भारत के लिए शिक्षानीति
 40. शिक्षा के बदलाव का कैसा हो मार्ग
 42. उच्च शिक्षा : भोथरे हथियार और अनिश्चित लक्ष्य
 46. Problems of Tertiary Education...
 49. दाखिले के पेंच में उलझती प्राथमिक शिक्षा
 51. संस्कृत विरोधी मानसिकता
 53. संस्कृत की टूटी कड़ियां जोड़ने की कोशिश
 55. Sanskrit, taught well, can be as...
 57. उच्च शिक्षा की ढलान
 61. नई पीढ़ी के सामने रामानुजन की प्रेरणा
 62. The lost university
 64. गतिविधि
- सन्तोष पाण्डेय
 - सुरेश भैया जी जोशी
 - प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
 - हनुमान सिंह राठौड़
 - विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
 - डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
 - Dr. TS Girishkumar
 - बजरंग प्रसाद मजेजी
 - भरत शर्मा 'भारत'
 - आशुतोष जोशी
 - डॉ. रेखा भट्ट
 - अतुल कोठारी
 - मुकुल कानिटकर
 - डॉ. दीनानाथ सिंह
 - डॉ. हरीदास व्यास
 - Prof. M. M. Ranga
 - शिवानंद द्विवेदी
 - बलबीर पुंज
 - प्रमोद भार्गव
 - Gurucharan Das
 - शंकर शरण
 - शशांक द्विवेदी
 - Pratap Bhanu Mehta

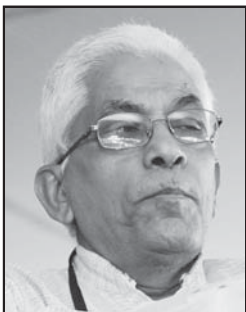
Education System for Growing India

□ Dr. A. K. Gupta

The world looks towards India to lead and provide right direction for development of self spiritually and physically by combination of ancient and modern teachings. We should learn from teachings of best of our idols- Guru ji in Drishti aur Darshan. Experiments with education system combined with malicious practices have destroyed many dreams.



22



बदलते भारत की शिक्षानीति

□ सन्तोष पाण्डेय

भारत की शिक्षा नीति का आधार भारतीय जीवन दर्शन होना चाहिये। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिये भौतिक विकास तो अपेक्षित व आवश्यक है ही, परन्तु मानव जीवन को सफल बनाने के लिये आध्यात्मिक आधार व गुणों का समावेश आवश्यक है। अध्यात्म भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है। शिक्षा मनुष्य की क्षमताओं और संभावनाओं को पूर्णतः प्रस्फुट कर सकती है। इसके प्रवेश से मानव संसाधनों का विकास कर ज्ञान का सृजन हो सकता है, भौतिक विकास हो सकता है, नये उत्पाद, नई तकनीक, नये समस्या-समाधान प्रस्तुत किये जा सकते हैं। मानव संसाधन विकास में ज्ञानार्जन के साथ-साथ इसके व्यावहारिक उपयोग के लिये कौशल (Skills) विकास भी आवश्यक है, परिवर्तित शिक्षा नीति को अधिक व्यावहारिक रूप से कारगर बनाने के लिये वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की समीक्षा आवश्यक है।

आज देश में बदलाव बड़ी तेजी से आ रहे हैं। ये बदलाव राजनीतिक व सामाजिक तो हैं ही, उनसे भी अधिक ये बदलाव जन साधारण की सोच में भी आ रहे हैं। शिक्षा के प्रति भी सोच में निरन्तर बदलाव आ रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त देश को प्रगति के मार्ग पर ले जाने के लिये उच्च शिक्षा के संख्यात्मक व गुणात्मक विकास हेतु प्रयास किये गये परन्तु प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के प्रति विशेष उत्साहजनक सोच नहीं। शिक्षा के प्रति सोच पूरी तरह मैकालयी पद्धति को पोषित करने वाली रही। आधुनिकीकरण हेतु यूरोप व अमरीकी व्यवस्था को आदर्श मानते हुये शिक्षा संबंधी निर्णय लिये गये। इनके साथ ही समाजवाद व वामपंथी सोच की पकड़ शिक्षा व्यवस्था पर मजबूत होती गई। प्रो. नूरुल हसन के शिक्षा मंत्री बनने तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही प्रगतिशीलता व सामाजिक न्याय की आड़ में वामपंथी नीतियाँ पूर्णतः शिक्षा व्यवस्था पर हावी हो गई। स्वतंत्रता आन्दोलन से उपजी राष्ट्रीयता, देशप्रेम, स्वभाषा विकास, भारत की सांस्कृतिक विरासत व भारतीय सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों की पूर्ण उपेक्षा का वातावरण बन गया। ये सभी बातें पिछड़ेपन व दकियानूसी सोच के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत की गई। सत्तर के दशक में सरकार की समाजवादी सोच व वामपंथी विचारों के शासक दल पर व्यापक प्रभाव के परिणामस्वरूप भारत को लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी गणतंत्र घोषित किया गया। वातावरण व सोच इस प्रकार की बनी कि यही एक मात्र तर्कसंगत सोच है, जिसके परे कोई और विचार हो ही नहीं सकता। भारत के गौरवशाली इतिहास व समाज की व्याख्या पूर्णतः वामपंथी तथा मैकालयी पद्धति में पले-बढ़े बुद्धिजीवियों व यूरोपीय इतिहासकारों की दृष्टि से प्रस्तुत की गई। इन सभी तत्वों का प्रभाव था कि 1986 की संसद में प्रस्तुत शिक्षा नीति में एक पक्षीय दृष्टिकोण अपनाया गया। राष्ट्रीय कैरीकुलम फ्रेमवर्क जैसे महत्वपूर्ण मार्गदर्शक तत्व भी समाजवादी वामपंथी सोच से ग्रस्त रहे। नीति में यद्यपि भारतीय

संस्कृति, विरासत इत्यादि का उल्लेख तो रहा, परन्तु व्यावहारिक रूप में यह पक्ष उपेक्षित ही रहा।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के व्यावहारिक रूप से पूर्ण प्रभावी होने से पूर्व ही, देश में आर्थिक उदारीकरण व वैश्विक व्यवस्था से जुड़ाव से देश में बदलाव का नया दौर शुरू हो गया। शिक्षा का क्षेत्र इस बदलाव से अछूता नहीं रहा। देश की अर्थव्यवस्था को जड़ता व पिछड़ेपन से मुक्त कराने के लिये एक प्रतियोगी, आधुनिक तकनीक प्रधान अर्थव्यवस्था बनाने के लिये वैश्विक वातावरण के अनुरूप परिवर्तन प्रारंभ हुये। शिक्षा में भी परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव करते हुये, निजी क्षेत्र को शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति मिली। सरकारी शिक्षा व्यवस्था की बदहाल व्यवस्था से लाभ उठाते हुये निजी शिक्षण संस्थाओं

संपादकीय

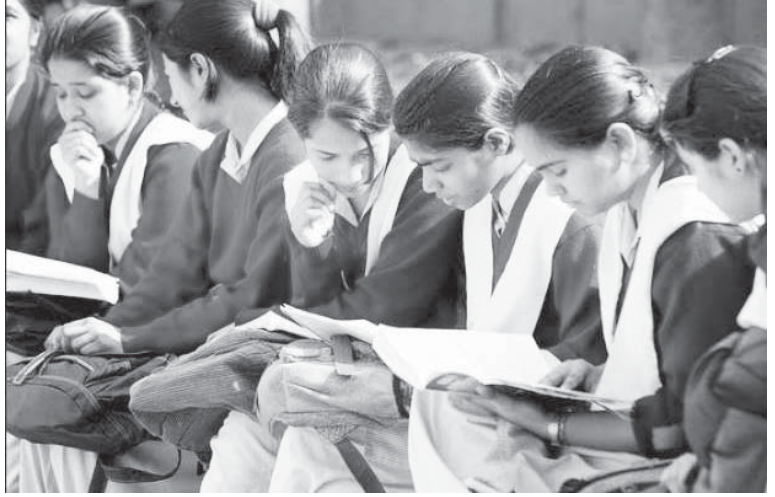
का व्याप्त फैलने लगा। सेवा क्षेत्र में भारत की सफलता ने शिक्षा के प्रति जनमानस को बदला। शिक्षा के क्षेत्र में वामपंथी-

समाजवादी पकड़ शिक्षित होने लगी। देश में एन.डी.ए. की श्री वाजपेई के नेतृत्व में बनी सरकार के कार्यकाल में जनता की सोच में परिवर्तन से शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण बदला। सामाजिक विज्ञान विशेषकर इतिहास में अब तक योरोपीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत तथ्यों पर आपत्ति की जाने लगी। पाठ्यक्रमों में राष्ट्रीय विचारों को शामिल करने, भारतीय राष्ट्रीय गौरव को पुनर्स्थापित करने वाली सामिग्री को स्थान मिलने लगा। वामपंथी-समाजवादी बुद्धिजीवियों ने कड़ा प्रतिरोध करते हुये, इसे शिक्षा का भगवाकरण घोषित किया। यूपीए की सरकार के 10 वर्षीय शासनकाल में अन्य क्षेत्रों की भाँति शिक्षा में अस्थिरता का दौर आया। पूर्व में एनडीए सरकार के दौरान हुये परिवर्तनों को उलटा गया। परन्तु देश में व्याप्त आर्थिक दुरावस्था व राजनीति असहायवावस्था ने भारत को एक स्वाभिमान राष्ट्र बनाने की इच्छा को बलवती बनाया। राष्ट्रीय गौरव, स्वाभिमान, स्वावलम्बन, देश की विशाल व अति प्राचीन काल से चली आ रही सांस्कृतिक विरासत शाश्वत जीवन मूल्यों, स्वदेशी भाव के जागरण तथा भारत के विशाल वैदिक-उपनिषद् ज्ञान व्यवस्था के उपयोग की उत्कट भावना ने शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन को अवश्यंभावी बना दिया है। मोदी सरकार के प्रचण्ड बहुमत से सत्ता में आने से शिक्षा में बदलाव

की आवश्यकता तीव्र हुई है। आज देश में वामपंथी-समाजवादी व मैकालयी बुद्धिजीवी व्यवस्था से समाज पूर्णतः मुक्त होना चाहता है। यह पृष्ठभूमि है, जिसमें शिक्षानीति में व्यापक बदलाव किये जाने आवश्यक हैं।

शिक्षा नीति में आमूलचूल परिवर्तन से पहले इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि तथाकथित समाजवादी धर्मनिरपेक्ष शिक्षा व्यवस्था कोई संवैधानिक बाधयता नहीं है। तीन दशक बाद पूर्ण बहुमत की सरकार को यह अधिकार है कि वह अपने राजनीतिक सामाजिक-सांस्कृतिक दर्शन के अनुसार शिक्षा व्यवस्था को ढाले। समाज को भी अधिकार है कि वह वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन कर सके। वह वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन कर सके। इस संदर्भ में शिक्षानीति में परिवर्तनों हेतु सुझाव दिये जा सकते हैं। शिक्षा सामाजिक-आर्थिक प्रगति व बदलाव का मुख्य साधन है। यह भौतिक, आध्यात्मिक व बौद्धिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रमुख अस्त्र है। भारत की शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जो राष्ट्रीय भावना को पोषित व संगठित करती हो, राष्ट्र गौरव को प्रेरित करती हो, और जो सांस्कृतिक विरासत व भारतीय जीवन मूल्यों को भावी पीढ़ियों को हस्तान्तरित करने वाली होने के साथ वैश्विक भौतिक विकास की गति के साथ कदमताल करने वाली हो, जिसमें ज्ञान, जीवन मूल्य व दक्षता के बीच समन्वय की क्षमता हो। ऐसी समग्र, सर्वव्यापी व सर्वग्राह्य शिक्षानीति ही राष्ट्र के उत्थान में सहायक, समाज की बौद्धिक क्षमता व संकल्प शक्ति को प्रेरित करने वाली हो सकती है। ऐसी शिक्षानीति द्वारा ही शिक्षा के बहुउद्देश्यीय लक्ष्यों का निर्धारण व क्रियान्वयन हो सकता है और शिक्षा में गुणवत्ता लायी जा सकती है। इन उद्देश्यों के संदर्भ में शिक्षानीति की संभावित रूपरेखा बन सकती है।

भारत की शिक्षानीति का आधार भारतीय जीवनदर्शन होना चाहिये। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिये भौतिक विकास तो अपेक्षित व आवश्यक है ही, परन्तु मानव जीवन को सफल बनाने के लिये आध्यात्मिक आधार व गुणों का समावेश



आवश्यक है। अध्यात्म भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है। शिक्षा मनुष्य की क्षमताओं और संभावनाओं को पूर्णतः प्रस्फुटित कर सकती है। इसके प्रवेश से मानव संसाधनों का विकास कर ज्ञान का सृजन हो सकता है, भौतिक विकास हो सकता है, नये उत्पाद, नई तकनीक, नये समस्या-समाधान प्रस्तुत किये जा सकते हैं। मानव संसाधन विकास में ज्ञानार्जन के साथ-साथ इसके व्यावहारिक उपयोग के लिये कौशल (Skills) विकास भी आवश्यक है, परिवर्तित शिक्षा नीति को अधिक व्यावहारिक रूप से कारगर बनाने के लिये वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की समीक्षा आवश्यक है। आज भारत की शिक्षा व्यवस्था दो भागों में बँट चुकी है। प्रथम देश के साधन संपन्न लोगों के लिये शिक्षा है, जो श्रेष्ठ, गुणवत्तापूर्ण, आधुनिक साधनहीन, सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े उपेक्षित व वंचित वर्ग व मध्यम वर्ग के लिये हैं, जो स्वयं साधनों से वंचित है। कुशलता का अभाव है? गुणवत्ता नदारद है। शिक्षकों व प्रबंधकों की प्रतिबद्धता पर प्रश्न चिह्न है। शिक्षक शिक्षक विहीन है, वह रोजगार की मजबूरी से शिक्षक बने हैं। शिक्षा भी ज्ञान का अर्जन बनने के बजाय कागजी डिग्रियाँ प्राप्ति का साधन बन गई है। आज की शिक्षा व्यवस्था में प्रवेश संख्या के विस्तार पर अधिक जोर है, परन्तु शिक्षा में क्या दिया जा रहा है, वह उपयोगी नहीं है। प्राथमिक शिक्षा में शिक्षा के अधिकार, सर्व शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन व्यवस्था

प्रवेश में व्यापक विस्तार तो दिखा रही है, परन्तु आठवीं तक परीक्षा नहीं लेने के नियम से गुणवत्ता पहला शिकार बन रही है। माध्यमिक शिक्षा भी लगभग इन्हीं दोषों से परिपूर्ण है। उच्च शिक्षा का परिदृश्य तो और भी भयावह है? रोजगार के लिये डिग्री चाहिये, परन्तु वह व्यवसाय व रोजगार की अपेक्षानुसार कार्य करने में समर्थ नहीं है। शोध की स्थिति अत्यधिक निराशाजनक है। परीक्षा का तनाव अंकों की दमघोंटू प्रतिस्पर्द्धा छात्र की प्रतिभा को निखारने के स्थान पर हतोत्साहित करती है। शिक्षा एक बड़ा और लाभदायक उद्योग बन गया है, जहाँ बड़े पैमाने पर निवेश द्वारा भारी वित्तीय लाभ कमाकर शिक्षा-माफियाओं का विकास हो रहा है। शिक्षा आज भी राज्याश्रित ही है। सरकार ही प्रवेश, पाठ्यक्रम व शुल्क पर कड़ा नियंत्रण रखती है। नवाचारों का सर्वथा अभाव है। शिक्षक शिक्षा भी बहुत ही स्तरीय व कागजी बन चुकी है। शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन भी सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं है। देश को स्वाभिमानी बनाने में भाषा का बड़ा योग होता है। आज भी भारत की शिक्षा व्यवस्था में विदेशी भाषा अंग्रेजी का ही बोलबाला है। भारतीय भाषायें आगे बढ़ने के स्थान पर पिछड़ती जा रही हैं। नये ज्ञान, तकनीक व विधाओं के विकास का मार्ग अवरुद्ध है। इन अवरोधों को दूर किये बिना उद्देश्यपूर्ण शिक्षानीति अव्यावहारिक होगी। □

सर्वजन हिताय हो भारत की शिक्षानीति

□ सुरेश (भैया जी) जोशी



किसी देश की शैक्षिक स्थिति का मापन वहाँ के लोगों का दूसरे लोगों व प्रकृति के प्रति व्यवहार देख कर लगाया जा सकता है। शिक्षानीति तय करते समय यह देखना होगा कि शिक्षा मात्र कुशलता बढ़ाने वाली नहीं हो, संवेदनशीलता को भी विकसित करे। भारतीय परम्पराओं को संरक्षित रख पाना आज की शिक्षा के समक्ष एक बड़ी चुनौति है। आज की शिक्षा व्यक्तिगत जीवन तो सुधार रही है मगर सामाजिक जीवन में परेशानियाँ उत्पन्न कर रही हैं। समाज की शक्ति से ही देश शक्तिशाली बनता है। जापान, इजराइल आदि देशों ने व्यक्तिगत उन्नति के साथ सामाजिक जीवन को उत्कर्ष बनाने के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। विकास के लिए शिक्षा की बात करते समय उन देशों की ओर भी देखा जाना चाहिए। शिक्षा ऐसी हो कि शिक्षित व्यक्ति धर्म व नीति पर चले।

वर्तमान में शिक्षा को विकास का पर्याय माना जा रहा है। हमारे सम्मुख भी यह प्रश्न है कि विकसित भारत की शिक्षा कैसी हो। विकास के लिए शिक्षा की बात करने से पूर्व यह स्पष्ट होना आवश्यक है कि विकास से हमारा अर्थ क्या है। आज पश्चिम में सम्पन्नता को ही विकास माना जाता है। भारत के लिए मात्र सम्पन्नता ही विकास का आदर्श नहीं हो सकती। भारत ने सदैव भौतिक विकास के स्थान पर मानव के विकास को अधिक महत्व दिया है। मानवीय गुणों के विकास की दृष्टि से भारत प्राचीनकाल में एक विकसित राष्ट्र रहा है तथा आज भी है। भारत ने विश्व में गुणपूर्ण जीवन का संदेश दिया है। भारत के लोग शस्त्र लेकर बाहर नहीं गए फिर भी भारतीय संस्कृति का विश्व में प्रसार हुआ। भारत ने विश्व को दिया ही दिया है, मांगा नहीं।

शिक्षा का मापन

किसी देश की शैक्षिक स्थिति का मापन वहाँ के लोगों का दूसरे लोगों व प्रकृति के प्रति व्यवहार देख कर लगाया जा सकता है। शिक्षानीति तय करते समय यह देखना होगा कि शिक्षा मात्र कुशलता बढ़ाने वाली नहीं हो, संवेदनशीलता को भी विकसित करे। भारतीय परम्पराओं को संरक्षित रख पाना आज की शिक्षा के समक्ष एक बड़ी चुनौति है। आज की शिक्षा व्यक्तिगत जीवन तो सुधार रही है मगर सामाजिक जीवन में परेशानियाँ उत्पन्न कर रही हैं। समाज की शक्ति से ही देश शक्तिशाली बनता है। जापान, इजराइल आदि देशों ने व्यक्तिगत उन्नति के साथ सामाजिक जीवन को उत्कर्ष बनाने के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। विकास के लिए शिक्षा की बात करते समय उन देशों की ओर भी देखा जाना चाहिए। शिक्षा ऐसी हो कि शिक्षित व्यक्ति धर्म व नीति पर चले।

धर्म का अर्थ प्रमाणिकता

भारत में धर्म का अर्थ जीवन में प्रमाणिकता व कर्तव्य पालन से रहा है। आज देश में बदमाशी करने वाले अधिकांश लोग पढ़े लिखे हैं। अच्छा कार्य करने की प्रतीज्ञा कर सरकारी

पदभार ग्रहण करते मगर उसके बाद भी सभी प्रकार का भ्रष्ट आचरण करते हैं। ऐसी शिक्षा व्यवस्था पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है। शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को दायित्व निभाना सिखाए, उसे धर्मनिष्ठ लोगों का अनुसरण करना सिखाए। इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। मिर्जा राजा जयसिंह ने समृद्धि को चुना और शिवाजी ने कर्तव्यपालन को। आज राजा जयसिंह को अधर्मी व शिवाजी को धर्मी के रूप में याद किया जाता है।

शिक्षा को सूचना आधारित नहीं होकर ज्ञान आधारित होनी चाहिए। बच्चों को ऐसा कुछ सिखाया जाना चाहिए कि वे परिवार के लिए निज सुख, समाज के लिए परिवार के सुख, देश के लिए समाज के सुख और विश्व हित में देश के सुख त्याग सके। बच्चों को बताया जावे कि हमारे यहाँ बहुजन हिताय के स्थान पर सर्वजन हिताय की अवधारण पर जोर दिया गया है। बच्चों को सिखाया जावे कि यदि वे किसी का दुःख निवारण करने की स्थिति में नहीं हों तो कम से कम किसी के लिए दुःख का कारण तो नहीं बने। बच्चों को सिखाया जावे कि समृद्धि से प्राप्त प्रसिद्धि की बजाय गुणों से प्राप्त प्रसिद्धि ही समाज में स्थायी श्रद्धा का कारण बनती है। रावण के पास अथाह समृद्धि थी मगर गुणों के कारण राम को आज भी पूजा जाता है।

शिक्षा निशुल्क हो

भारत में जीवन में नैतिक मूल्य को ही प्रमुख स्थान दिया जाता रहा है। नैतिक मूल्य ही सार्वदेशिक व सार्वकालिक माने गए हैं। मैकाले ने शासन व्यवस्था को पुख्ता करने हेतु देश में काले अंग्रेज तैयार करना प्रारम्भ किया। स्वार्थवश पढ़ा लिखा वर्ग देशहित छोड़ कर अंग्रेजों को भगवान मान कर पूजने लगा। परेशानी यह है कि अंग्रेजों द्वारा लगाई गई शिक्षा की विषबेल अभी भी फलफूल रही है। अंग्रेजों ने शिक्षा को व्यवसाय बनाया जो आज और भी तेजी से चल रहा है। अंग्रेजों के आने से पहले भारत में यह स्थिति नहीं थी। शिक्षा पूर्णतः निशुल्क थी, हर शिक्षित व्यक्ति निस्वार्थ भाव से

अन्यों को शिक्षित किया करता था।

देश स्वतन्त्र के साथ अंग्रेजों की व्यवस्था समाप्त हो जानी थी मगर कोई गम्भीर प्रयास नहीं किए गए। शिक्षा में आधारभूत परिवर्तन करना सरकार की जिम्मेदारी थी जिसे नहीं निभाया गया। समय के साथ स्थिति जटिल हो गई है। स्वामी विवेकानंद ने घोषणा की थी कि भारत एक बार पुनः विश्वगुरु बनेगा। स्वामी विवेकानंद की वाणी को सत्य सिद्ध करना हमारी जिम्मेदारी है। स्वामी जी की बात गलत नहीं हो सकती, विश्व गुरु बनना भारत की नियति है। अज्ञान व भय जैसे कारणों को दूर करने की आवश्यकता है। असत्य का साथ नहीं देकर सत्य के साथ चलने की आवश्यकता है। महर्षि अरविंद की सहयोगी 'श्री माँ' ने एक बार कहा था कि भारतीयों की सबसे बड़ी परेशानी यह है कि भारतीय स्वयं के विषय में नहीं जानते हैं। कुछ भारतीय लोगों के पीछे मुड़ कर भारत के अतीत की ओर देखना प्रारम्भ करने पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए 'श्री माँ' ने आशा प्रकट की थी अब कुछ जरूर होगा।

शिक्षानीति बनाते हुए भौतिक सम्पन्नता प्राप्त करने से अधिक ध्यान

चारित्रिक संपन्नता बढ़ाने पर देना होगा। संस्कृति के अन्तर व बाह्य, दोनों पक्ष की सुचिता बनाए रखने की आवश्यकता है। भावी पीढ़ी को धैर्यवान, साहसी तथा निर्भय बनाने के साथ कमजोरों की रक्षा करना सिखाना होगा। प्रसन्नता की बात है कि भारत ने कई क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका बनाई है। परमाणु परीक्षण, सूचना प्रौद्योगिकी, अन्तरिक्ष विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र आदि उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। पोकरण विस्फोट, चन्द्रयान व मंगलयान की सफलता ने विश्व को विस्मित किया है। लोगों की मानसिकता भी बदल रही है। दक्षिण भारत के लोग हिंदी सीखना चाहते हैं क्योंकि मोदी जी हिंदी में बोलते हैं।

महान भारत की नींव विद्यालय

भारत ने विकास की दिशा पकड़ी है मगर देखना यह कि विकास का लाभ किसे मिल रहा है? अभी तो 20 प्रतिशत लोग ही आनन्द उठा रहे हैं। 80 प्रतिशत लोग वंचित वर्ग बने हुए हैं। वंचित वर्ग को पेटभर भोजन व साधारण दवा भी उपलब्ध नहीं है। इसे सही विकास नहीं कहा जा सकता। भौतिक विकास हेतु पूजा, संसाधन, आधारभूत ढाँचा, तकनीकी व प्रशासनिक कुशलता

आदि सभी देश में उपलब्ध है। अवसर मिलने पर आम आदमी भी खास कार्य करने की स्थिति में है। जुगाड़ व छकड़ा जैसे देशी आविष्कारों के रूप में आमजन की मनःस्थिति को देखा जा सकता है। कमी है तो दृढ़ इच्छाशक्ति की। हमें निर्णय लेने वाला नेतृत्व तैयार करना है। ऐसा नेतृत्व तैयार करना है जो आदर्श जीवन जीने वाला हो। ऐसा माहौल तैयार करना है कि आदर्श जीवन जीने वालों को समाज में सम्मान मिले। ऐसा संस्कारों को सुदृढ़ करके ही किया जा सकेगा। भारत के सामान्य जन को उपर उठाना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। प्राचीन भारत में ऐसा था, तभी भारत जगतगुरु था। केवल आक्रांताओं को दोष देने से काम नहीं चलेगा। नीति निर्धारकों को चिंतन करना होगा। 2020 तक भारत को विश्व शक्ति बनाने का लक्ष्य लेना होगा। आज के चिंतन का सार यह है कि भारत को महान बनाने की नींव विद्यालयों में रखी जाएगी। □

(सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 26 दिसम्बर 2014 को वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत के सभागार में दिए प्रबोधन पर आधारित)– प्रस्तुतकर्ता विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी



उच्चशिक्षा ग्रामाभिमुखी हो

□ प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय



ग्रामीण उच्च शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत, विकासशील, प्रश्नाकुल, जिज्ञासु, और राष्ट्रानुकूल है। यहाँ की युवा होती पीढ़ी को उचित, गुणात्मक, राष्ट्रानुकूल तथा भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। ऐसे भी अनायास ही आज भी ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयों में भारतीय भाषाओं में ही शिक्षा दी जा रही है। अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करने के साथ मनो में जो गौरव-बोध होना चाहिए, यह प्रवृत्ति कम हुई है। युवाओं को कई बार लगता है कि हम किन्हीं दबावों या अभावों के वशीभूत होकर स्वभाषा में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सबके अन्तःस्थल तक यह बात बैठा दी गयी है कि अपनी भाषा में पढ़कर उच्च, अति उच्च और सर्वोच्च पद को नहीं प्राप्त किया जा सकता।

लंदन में रहकर 20 वर्ष तक भारत के राज्यतंत्र का संचालन करने वाला हेनरी उंडास यह मानता था कि 'भारतीय, अंग्रेजों से निम्न कक्षा के ही हैं और उनमें यदि कुछ कृतज्ञता का भाव है तो उन्होंने अपने देश में हुए विकास के लिए अंग्रेजों को उनके ज्ञान और परोपकारी कार्यों के लिए धन्यवाद देना चाहिए।' भारतीय सभ्यता और शिक्षा पद्धति के बारे में घृणास्पद आचरण के परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षा पद्धति को बहुत सहना पड़ा। भारतीय शिक्षा पद्धति का यथाशीघ्र अन्त हो जाए, उस हेतु से उसका अनवरत मजाक उड़ते रहना, उसे धिक्कारना तथा उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी स्रोतों का लोप हो जाने की व्यवस्था करना, अंग्रेजों के लिए आवश्यक था। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से कभी एक भी शिक्षा संस्था बंद नहीं करवाई या वैसे कदम भी नहीं उठाए, क्योंकि उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी। शिक्षा पद्धति का मखौल करने से, शिक्षा के सभी स्रोत बंद कर देने से ही उनका इच्छित

कार्य सिद्ध हो जाता था।

'रमणीय वृक्ष', धर्मपाल की प्रस्तावना से भारत गाँवों का देश है और ग्राम विकास, भारत का विकास है, उस वाक्य को स्वतंत्रता के पश्चात, भारत के महापुरुषों से लेकर ग्रामीण परिवेश के सभी प्रबुद्ध, बाल, वृद्ध तथा महिलाओं के साथ ही विद्यालय जाते हुए बच्चों ने दुहराया है। आज भी 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँवों में रहती है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा के लिए कई प्रयोग किये गये। जिसके फलस्वरूप ग्रामीण आबादी साक्षरता की तरफ प्रवृत्त हुई है। गाँवों को उच्च शिक्षा के साथ जोड़ा जाए, इसके लिए भी प्रयास प्रारंभ हुए। निजी महाविद्यालयों को ग्रामीण क्षेत्र में खोले जाने की आवश्यकता महसूस की गयी। कई प्रान्तों ने न्यून और सामान्य शर्तों पर शिक्षा विकास को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्तिगत संस्थाओं, ट्रस्टों तथा व्यक्तियों को महाविद्यालय चलाने की अनुमति दी। कई दशकों से उच्च शिक्षा की आशा में बैठे नौजवानों ने इन महाविद्यालयों की ओर उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु अपने को प्रवृत्त किया। ग्रामीण क्षेत्र में प्रारंभ हुए इन महाविद्यालयों ने



अपनी उपस्थिति तो दर्ज करायी लेकिन शिक्षा की गुणवत्ता की कसौटी पर अधिकांश महाविद्यालय खरे क्या, फिसट्टी साबित हुए। प्रवेश मात्र को महाविद्यालय संचालन का ध्येय मानने वाले प्रबंधन ने उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को भारी क्षति पहुँचायी। लगभग 20,000 महाविद्यालय जिला केन्द्र और उसके नीचे तहसील केन्द्र तथा उससे भी छोटे कन्द्रों में अवस्थित हैं, उसमें से अधिकांश स्नातक स्तर के हैं। इनमें से भी अधिकांश महाविद्यालय मात्र कला वर्ग की शिक्षा देते हैं। कुछ महाविद्यालयों ने मानविकी और समाज विज्ञान के विषयों को अध्यापन के लिए चयनित कर प्रारंभ किया है। विज्ञान और वाणिज्य की शिक्षा से ये महाविद्यालय दूर ही रहे। उसका परिणाम यह हुआ कि देखते-देखते भारत वर्ष के विशाल ग्रामीण क्षेत्र की नई पीढ़ी विज्ञान और वाणिज्य की शिक्षा से वंचित होती चली गयी। किसानों-मजदूरों के बच्चों का रुझान उच्च शिक्षा की ओर बढ़ते देखकर कई संस्थाओं ने शिक्षा को व्यवसाय का अच्छा माध्यम मानकर उस ओर प्रवृत्त हो गये। यह कार्य समाज में प्रतिष्ठा प्रदान करानेवाला तथा अल्पश्रम से आय प्रदाता मानकर फैक्ट्री और कंपनियों की तरह एक-एक व्यक्तियों ने कई-कई महाविद्यालय खोल दिये हैं। जिन्होंने कभी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं किये तथा जिन्हें उच्च शिक्षा का न तो अनुभव है, नहीं देश की शिक्षा व्यवस्था को बेहतरीन बनाने में कोई रुचि है, वे लोग भी महाविद्यालय संचालन में मजबूती के साथ प्रवृत्त हैं।

उच्च शिक्षितों के शोषण एवं डिग्री बेचने के व्यवसाय के रूप में पनपते विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों ने विशेष रूप से सदियों से उच्च शिक्षा से वंचित रहे ग्रामीणों को जमकर लूटा है, उन्हें शोषित किया है और करते भी जा रहे हैं। करोड़ों डिग्री धारी युवा अपने विषय के सामान्य - ज्ञान से अपरिचित भी हैं, विमुख भी। शिक्षा



होने मात्र से कोई देश विकसित नहीं हो सकता। प्रत्येक विषय की शिक्षा गुणवत्ता युक्त होनी चाहिए। शिक्षा क्षेत्र में भी व्यावसायिक शब्दों का प्रचलन बढ़ा है। शिक्षा जगत के 'खिलाड़ी' जैसे घटिया शब्द प्रचलन में आ गये हैं।

उच्च शिक्षा के अनुपयोग, प्रचार, आवश्यकता और उन्नत मस्तिष्क की दृष्टि से भारत के ग्रामीण क्षेत्र बहुत उर्वर हैं। सामाजिक पर्यावरण के प्रदूषण की तमाम विकृतियों के बावजूद एक बहुत बड़े वर्ग के भीतर भारत के शाश्वत जीवनमूल्यों के प्रति न केवल विश्वास है, अपितु वे उसे धारण भी करते हैं। कमजोर आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक पिछड़ेपन के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति जीवन मूल्यों के कारण अराजक नहीं हो पाई है। यदि गाँवों में आज भी शांति, भाईचारा, आत्मीयता अतिथि सत्कार, सम्मान-स्नेह तथा संतोष भाव दिखता है तो, उसका कारण परम्परा से प्राप्त उनका मूल्यबोध है। उस मूल्यबोध को बनाए रखने और उन्नत करने की आवश्यकता है। इसे भोलापन मानकर शिक्षा के नाम पर ठगी की जा रही है। कई महाविद्यालय तो क्षेत्र विशेष में जाति केन्द्रित होते जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के लिए यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है।

ग्रामीण उच्च शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत, विकासशील, प्रश्नाकुल, जिज्ञासु, और राष्ट्रानुकूल है। यहाँ की युवा होती पीढ़ी को उचित, गुणात्मक, राष्ट्रानुकूल तथा भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। ऐसे भी अनायास ही आज भी ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयों में भारतीय भाषाओं में ही शिक्षा दी जा रही है। अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करने के साथ मनो में जो गौरव-बोध होना चाहिए, यह प्रवृत्ति कम हुई है। युवाओं को कई बार लगता है कि हम किन्हीं दबावों या अभावों के वशीभूत होकर स्वभाषा में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सबके अन्तःस्थल तक यह बात बैठा दी गयी है कि अपनी भाषा में पढ़कर उच्च, अति उच्च और सर्वोच्च पद को नहीं प्राप्त किया जा सकता। स्वतंत्रता के पूर्व तथा उसके पश्चात्, भी अधिकांश लोगों ने अपनी भाषा में ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर प्रतिष्ठा प्राप्त की है। मुगलों और अंग्रेजों के घोर शासन के बीच संस्कृत माध्यम से अध्ययन कर प्रतिष्ठित होने की प्रतिस्पद्धा थी। लम्बे समय तक संस्कृत पढ़ा व्यक्ति ही इस देश में विद्वान माना जाता था। आज भी भारतीय मन में यही संकल्पना और स्थिति है कि बिना संस्कृत ज्ञान के कोई व्यक्ति विद्वान कैसे हो सकता है। इस स्थिति को संस्कृत

के साथ ही भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी, बांग्ला, तेलुगू, तमिल, मराठी आदि के संदर्भ में भी क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। समाज के भीतर उच्च शिक्षा के संदर्भ में इस भाव के जागरण की आवश्यकता है कि जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त किया है, वह भारत की वस्तुस्थिति से परिचित नहीं हो सकता। सच्चाई भी यही है। इसे उदाहरण से समझने के लिए हम हिन्दी, अंग्रेजी और मराठी की केवल उन कविताओं की चर्चा करें जो उच्च शिक्षा के स्तर पर पढ़ाई जाती है, तो हम देखेंगे कि हिन्दी और मराठी या अन्य भारतीय भाषाओं की जो कविताएँ भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है, उनमें भारतीयजन, पहाड़, पेड़-पौधे, नदी तालाब हैं, वही अंग्रेजी की कविताओं में इंग्लैण्ड सहित पूरा यूरोप और अमेरिका है, उनकी संस्कृति के साथ ही नदी, पहाड़, पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ हैं, जो भारतीय विद्यालयों तक सम्प्रेषित नहीं होती। भारत का युवा 'डेफोडिल्स' को सरसों का फूल' समझकर संतोष कर लेता है।

अच्छी बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महाविद्यालय खुल रहे हैं। शिक्षा हिन्दी या भारतीय भाषाओं के माध्यम से दी जा रही है। आवश्यकता है उचित पुस्तकालय, शैक्षणिक उपकरण, मजबूत वित्तीय व्यवस्था, योग्य और समर्पित प्राध्यापकों की। व्यवस्थापकों ने यह मान लिया है कि जर्जर और पुराने उपकरणों से भी ग्रामीण क्षेत्र को शिक्षित किया जा सकता है। उन माध्यमों का उपयोग कर कोई भी विद्यार्थी उन्नत नहीं हो सकता। उनके लिए भी सुन्दर भवन, अच्छे उपकरण, अच्छे आवास, सुन्दर और व्यवस्थित कक्षाएँ, आधुनिक पुस्तकालय, निरन्तर विद्युत उपलब्धता, सम्प्रेषण की नूतन तकनीक, तथा यातायात की सुगम सुविधाओं की आवश्यकता है। यदि ये सुविधाएँ ग्रामीण क्षेत्र, जिसके अन्तर्गत जिला स्तर के इतर

स्थानों के महाविद्यालय आते हैं, उन्हें उपलब्ध करायी जाएँ तो गुणवत्ता एवं स्वाभिमान वृद्धि-दोनों साथ-साथ होगी।

ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयों के विद्यार्थी भारत के भविष्य की आशा हैं। उनमें से एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी है, जिनकी पहली पीढ़ी महाविद्यालय आयी है। महाविद्यालयों में अलग-अलग सामाजिक समूहों का एकत्र मिलन होता है। ऐसे में परिसर का स्वस्थ माहौल आवश्यक है। उन्हें उन्नत शिक्षा के साथ-साथ उचित प्रेरणा की भी आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्र के अधिकांश महाविद्यालय राज्य विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध होते हैं। भारत के कुछ ही प्रांतों में राजकीय, शासकीय महाविद्यालयों की श्रंखला है। कई प्रान्त शासकीय महाविद्यालयों की संख्या की दृष्टि से बहुत पीछे हैं। ऐसी स्थिति में संस्थाओं का संचालन निजी संस्थाओं के पास है। वे प्राध्यापकों को उचित वेतन नहीं देते। गुणवत्ता की दृष्टि से कमजोर तथा मानकों से न्यून योग्यताधारी प्राध्यापकों की नियुक्ति करते हैं। आर्थिक अभावों से जूझती हुई शिक्षा आज की परिस्थिति में बहुत दिनों तक किसी महाविद्यालय में टिकी नहीं रह सकती। निजी संस्थाएँ कर्ज में रहकर उन्हें वेतन नहीं दे सकती। ऐसी स्थिति में सरकारों का यह महती दायित्व बन जाता है कि वे प्रत्येक तहसील स्तर से नीचे जाकर महाविद्यालय खोलें और उचित तथा पर्याप्त संख्या में शिक्षक तथा शिक्षणोत्तर कर्मचारियों की नियुक्ति करें। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयों की सुविधाओं में अन्तर शहर और गाँव के आधार पर किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए। इससे समान शिक्षा के भाव का क्षरण होता है। ग्रामीण क्षेत्र में आदर्श महाविद्यालय होने चाहिए। समर्पित एवं योग्य प्राध्यापकों को इन महाविद्यालयों में अध्यापन के लिए प्रेरित करना होगा। शहरों में ही महाविद्यालय हो, यह प्रवृत्ति ठीक नहीं। सभी प्रकार के

गुणवत्तायुक्त शिक्षण संस्थानों की श्रंखला को गाँवों की ओर मोड़ना होगा। विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, कला, तथा वाणिज्य के अच्छे महाविद्यालय कहाँ पर हैं? जब इस प्रश्न के उत्तर में किसी गाँव का नाम उभर कर आएगा तो हमें समझना चाहिए कि भारत में उच्च शिक्षा सही मायने में अग्रसर है। कहने की जरूरत नहीं कि प्राचीन भारत के अच्छे शिक्षण संस्थान अरण्य में होते थे। तब का नालंदा, तक्षशिला या विक्रमशिला उस समय के उन्नत शहरों में नहीं बने थे।

ग्रामीण क्षेत्र में महाविद्यालय की स्थापना की चर्चा के क्रम में भूमण्डलीकरण, बाजार की आवश्यकता, गुणवत्ता का मानवीकरण, तकनीकीकरण, वित्तीय प्रबंधन और ज्ञान का विस्तार, सामाजिक स्तरीकरण, प्राध्यापकों के ठहराव, उनके परिवारों की मानसिक बनावट और बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य से संबंधित प्रश्न, राष्ट्रीय श्रंखला के साथ सम्बद्धता, चरणबद्ध विकास, भाषा की बाधा तथा अन्तर्राष्ट्रीयता के सवाल, निजी और सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन एवं शहरीकरण के दबावों का प्रतिप्रश्न, टीम वर्क, आलोचनात्मक सोच का विकास, फैशन, बहुआयामी व्यक्तित्व का विकास, कार्य संस्कृति, आर्थिक व्यय की अधिकता, ग्राम्य संस्कृति का प्रभाव, गोष्ठी-सेमिनारों की प्रभाव, कमजोर शासन, बुद्धिजीवी बहसों की अनुपलब्धता, गोष्ठी-सेमिनारों का अपर्याप्तता, उत्तरदायित्व बोध का मापन आदि यक्ष प्रश्न खड़े होंगे। इन प्रश्नों से विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी प्राध्यापक के भीतर का जाग्रत आचार्यत्व इन सबका समाधान कर देगा। 'उच्च शिक्षा ग्रामाभिमुखी' हो, इस ध्येय वाक्य को अंगीकृत कर काम करने से अधिकांश शैक्षणिक प्रश्नों का समाधान स्वतः हो जाएगा। □

(शोध निदेशक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

हमारी शिक्षा विकासोन्मुखी हो

□ बजरंगी सिंह



मेरे विचार में कोई भी शिक्षा नीति बने उसे सफल बनाने के लिए हमें सही रुझान वाले अध्यापकों की जरूरत होगी। बिना अध्यापक और अध्यापिकाओं के ईमानदार सहयोग और कार्य के हम शिक्षा क्षेत्र में कोई बड़ी सफलता हासिल नहीं कर सकते हैं। शिक्षा तथा शिक्षकों के बीच लंबे समय तक रहने और उससे मिले अनुभवों से मैं आज यही कह सकता हूँ कि 20-25 प्रतिशत ही ऐसे लोग मिले जो स्वेच्छा से इस पेशे में आये हैं। शेष तो ऐसे हैं जो इस पेशे में रहने लायक भी नहीं हैं। कुछ भी कहिए जब तक समर्पित और ईमानदारीपूर्वक शिक्षा के कार्य को करने वाले लोग नहीं मिलते हैं। केवल रोजमर्रा की दिहाड़ी पूरी करने वाले शिक्षकों के सहारे शिक्षा में किसी बड़े बदलाव की कल्पना मिथ्या होगी।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नारा दिया है कि 'सबका साथ सबका विकास' यह तभी संभव होगा जब हम अपने देश की शिक्षानीति ऐसी बनाएं, जिससे समाज के हर वर्ग के व्यक्ति को हम शिक्षित ही नहीं अपितु सक्षम बना सकें। यह तभी संभव है, जब हमारी शिक्षा विकासोन्मुखी और सर्वग्राही बने। आजादी के बाद पहली बार 1986 में नयी शिक्षानीति के लिए एक दस्तावेज तैयार हुआ किन्तु दुर्भाग्य रहा हम उसे जमीन पर नहीं उतार सके। उम्मीद थी कि हम लीक से हटकर कुछ नया करेंगे किन्तु उसके क्रियान्वयन में हम ईमानदारी नहीं बरत पाये और न ही वांछित वित्तीय संसाधन ही जुटा सके। परिणाम रहा कि सारी उम्मीदें धरी की धरी रह गयीं।

अब मोदी सरकार ने एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने का संकल्प दोहराया है। उसके लिए सरकार ने एक ईमानदार कोशिश भी शुरू कर दी है। यहां मैं उल्लेख करना जरूरी समझता हूँ कि जो गलतियाँ 1986 की शिक्षानीति को मूर्त रूप देने में तत्कालीन सरकार ने की थी वही गलती यदि मोदी सरकार ने दोहराई तो देश को बड़ी निराशा होगी। हम जानते हैं कि शिक्षा के मामले में हम वह वित्तीय संसाधन नहीं जुटा पाये जो अपेक्षित था। उसी का परिणाम रहा कि आज

तक हम एक सर्वमान्य शिक्षा नीति नहीं बना सके हैं, अपनी गलतियों का सिला हम कब तक समाज को देते रहेंगे।

भला समाज ने शासकों को अपने नागरिकों के हित में कार्य करने से कब रोका है। दूसरी बात हम बार-बार आर्थिक परेशानियों की बात क्यों करते हैं? जबकि विवेकपूर्ण ढंग से अपनी प्राथमिकताएं तय करने और उसी के अनुसार बजट जुटाने की जिम्मेदारी सरकार के हाथ में है। मेरा मानना है कि वर्तमान परिस्थिति हमारी अपनी बनायी हुई है। जिसमें भलेमानुष अपने आपको अलग-थलग पाते हैं और यह भी सर्वविदित ही है कि अफसरशाही, विशेषरूप से उच्च स्तर पर किस अंदाज में काम करती हैं। उनका ये अंदाज केवल उदासीन ही नहीं बल्कि हृदयहीन भी है।

अगर ऐसे ही चलता रहा तो हम अपने इतने बड़े लक्ष्य तक कदापि नहीं पहुंच सकते। तो फिर, सफलता सुनिश्चित करने के लिए हमें यह देखना पड़ेगा कि शिक्षा कार्यक्रमों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन केवल निष्ठावान शिक्षाविदों के ही हाथ में हो जो सीधे आपके प्रति जवाबदेह हो न कि किसी अन्य के प्रति जैसा की सदैव होता है। अब वह समय आ चुका है कि हम इस स्थिति को बदल डालें, साथ ही माहौल को भी है और लगन व ईमानदारी से काम करने के लिए अनुकूल परिस्थितियों को भी।



वर्तमान शिक्षा प्रणाली को लेकर कई तरह की आलोचना होती आ रही है। ऐसी परिस्थिति में मोदी सरकार ने शिक्षानीति में एक सर्वमान्य बदलाव का संकल्प लिया है। इससे लोगों की आशाएं बढ़ी हैं। देश में इस समय सुधार के प्रति विश्वास और नया उत्साह है। इससे यह उम्मीद और भी बढ़ गयी है कि मोदी सरकार शिक्षा क्षेत्र में भी बदलाव के लिए एक नयी सार्वजनिक बहस के लिए एक दस्तावेज तैयार करायेंगी। ताकि लोगों की प्रतिक्रियाएं मिल सकें और उसके आधार पर एक नयी शिक्षानीति तय हो सके। शिक्षा का समन्वित विकास किया जाना चाहिए। सही शिक्षा व्यवस्था से ही राष्ट्रीय विकास संभव है। शिक्षा के विकास की प्राथमिकताओं में हमें नयी टेक्नोलॉजी को महत्व देना होगा तो वहीं शारीरिक शिक्षा, योग के साथ त्रिभाषा सूत्र को भी अहमियत देने की जरूरत है। हमें यह भी तय करना होगा कि व्यावसायिक शिक्षा का क्या और कैसा स्वरूप हो।

इसमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा तथा बेरोजगार शिक्षितों की समस्याएं हल करना आसान नहीं है। यह स्थिति विकास पर आधारित उस नीति का परिणाम है, जिससे आय तथा सम्पत्ति के समान बंटवारे के साथ अर्थव्यवस्था के ढांचे में परिवर्तन नहीं हो पाया। अभी तक इस पहलू की अनदेखी हुई है। शिक्षा का काफी हद तक राजनीतिकरण हो चुका है जिसके कारण शिक्षा के मूल्यों में गिरावट आयी हैं। आज तक हम प्रवेश की कोई समुचित नीति भी विकसित नहीं कर सके और न ही केपीटेशन फीस पर कोई फैसला कर पाये। दूसरी ओर यह प्रयास किया गया कि शिक्षा संस्थानों में सभी सुविधाएं हों के प्रश्न पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। हमने उच्च शिक्षा को गंभीरता से नहीं लिया। परिणाम हुआ कि हम आगे बढ़ने के बजाय पीछे होते गये। तकनीकी शिक्षा में जरूर हम एक सीमा तक आगे बढ़े हैं। अभी इस दिशा में और प्रगति करने की जरूरत है।

हमें शिक्षा के ढाँचे को ऐसा बनाना होगा जिससे समाज के हर वर्ग को लाभ मिल सके और सब पढ़े और आगे बढ़े इस संकल्प को मूर्त रूप मिल सके।

सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा विफल रही है। इसका मुख्य कारण यह रहा कि निहित स्वार्थों ने यथास्थिति बनाये रखने और आसानी से उसमें घुस आने का प्रयास किया है। शिक्षा में मूल्यहास से समाज को बड़ी क्षति हुई है। अध्यापक तथा शिक्षा प्रशासक अमीर बनने के लालच में उच्च आदर्शों को तिलांजलि दे देते हैं। इसलिए अध्यापक संगठनों को चाहिए कि वे आदर्श आचार संहिता तैयार करें। वैसे इसे लेकर एक मत होना कठिन है। लेकिन शिक्षा क्षेत्र में बदलाव के लिए जरूरी होगा कि हम कुछ कठोर किन्तु छात्रों के हित में कदम उठायें। इसलिए आवश्यक हो गया है कि जितनी जल्दी हो सके शिक्षा को राजनीतिक हस्तक्षेप से बाहर लायें। इसी के साथ ही हम देश को 21वीं शताब्दी में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाना चाहते हैं तो हमें शिक्षा को उपेक्षित और निचला स्थान नहीं बल्कि एक महत्वपूर्ण और केन्द्रीय स्थान देना होगा। यह तभी संभव है जब हम सकल बजट का 10 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करें। यदि हमने पहली पंचवर्षीय योजना के कुल खर्च का 7.5 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च जारी रखा होता तो आज शिक्षा की यह दुर्गति न होती। शिक्षा कोई उद्योग नहीं है जिसके परिणाम जल्दी मिलने लगे। शिक्षा के परिणाम का ही प्रतिफल है कि हम आज आधुनिक भारत में कई क्षेत्रों में सबसे आगे हैं।

अंत में मैं यह व्यक्तिगत रूप से कहना चाहूंगा कि अब वह समय आ गया है कि हम हम शिक्षा को ऊंचे पायदान पर रखें। राष्ट्रीय अखंडता और देश की एकता के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित करे और उसे लागू करे। इसके लिए आवश्यक है कि 10+2+3 की शिक्षा प्रणाली को जितनी तेजी से हो सके, सारे देश में

समान रूप से लागू किया जाये। 14 वर्ष की आयु तक, विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के, सभी बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने को उच्चतम प्राथमिकता दी जाय। उच्चतम माध्यमिक चरण में व्यावसायिक प्रशिक्षण शिक्षा नीति का एक प्रमुख अंग होना चाहिए। व्यावसायिक प्रशिक्षण को केवल रोजगार या उद्योग से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। इसमें कृषि, सेवा क्षेत्र ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों को भी महत्व दिया जाना चाहिए। ताकि हमारे युवक खुद काम करने लायक बन सकें। अभी तक माध्यमिक शिक्षा जो शिक्षा की रीढ़ है उसे हमने वह महत्व नहीं दिया जो जरूरी था।

मेरे विचार में कोई भी शिक्षानीति बने उसे सफल बनाने के लिए हमें सही रुझान वाले अध्यापकों की जरूरत होगी। बिना अध्यापक और अध्यापिकाओं के ईमानदार सहयोग और कार्य के हम शिक्षा क्षेत्र में कोई बड़ी सफलता हासिल नहीं कर सकते हैं। शिक्षा तथा शिक्षकों के बीच लंबे समय तक रहने और उससे मिले अनुभवों से मैं आज यही कह सकता हूँ कि 20-25 प्रतिशत ही ऐसे लोग मिले जो स्वेच्छ से इस पेशे में आये हैं। शेष तो ऐसे हैं जो इस पेशे में रहने लायक भी नहीं हैं। कुछ भी कहिए जब तक समर्पित और ईमानदारी-पूर्वक शिक्षा के कार्य को करने वाले लोग नहीं मिलते हैं। केवल रोजमर्रा की दिहाड़ी पूरी करने वाले शिक्षकों के सहारे शिक्षा में किसी बड़े बदलाव की कल्पना मिथ्या होगी। इस व्यवसाय में घुस आये वे व्यक्ति जो करना तो कुछ चाहते थे लेकिन अनेक कारणों से उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पायी। ऐसी स्थिति में उन्होंने अध्यापन व्यवसाय अपना लिया। यह स्थिति आज देश और समाज दोनों के लिए खतरनाक साबित हो रही है। इस ओर भी हमें गौर करना होगा तभी कोई शिक्षानीति सफल हो सकेगी और सक्षम भारत का निर्माण हो सकेगा। □

(स्वतंत्र लेखक)

नैतिक शिक्षा और शिक्षा में नैतिकता

□ हनुमान सिंह राठौड़



समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों के विपरीत आचरण के लिए खड़े हुए व्यक्ति या समूहों को केवल भावनात्मक आधार पर संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। क्रिया-प्रतिक्रिया से सार्थक परिणाम नहीं निकलता। तर्क सहित विचार तथा संवाद की व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही किसी भी विचार के मण्डन की कसौटी क्या होगी? किसी बात के स्वीकार या अस्वीकार का आधार क्या है? मनुष्य में यह विवेक उत्पन्न करने की आयु विद्यार्थी काल है तथा उपयुक्त स्थान विद्यालय है तथा इसलिए जितने भी विचारक, शिक्षाशास्त्री तथा शिक्षा आयोग भी, इस बात की आवश्यकता प्रस्तावित करते हैं कि विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का प्रावधान किया जाए।

दीर्घकालिक इतिहास परम्परा में सम्यक, समृद्ध, सुहृद समाज रचना के साधक तत्वों का चयन तथा बाधक तत्वों के निषेध की व्यवस्था संविधान व समाज नियमों के द्वारा की जाती है। समाज के लिए स्वीकृत आचरण व्यवहार के उत्कृष्ट, सर्वकालिक, सार्वभौमिक नियमों को नीति या धर्म के रूप में स्वीकृति मिलती है। इन नियमों को जीवनमूल्यों की संज्ञा प्राप्त होती है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, सर्वपथ समादर, चरित्र, शील, संयम आदि बाह्य गुणों की सूची बनाई जा सकती है। इस नीति नियमों का समाज के प्रत्येक व्यक्ति से आचरण की अपेक्षा की जाती है, इसका अर्थ है इनसे विचलन की सम्भावना सतत विद्यमान रहती है। ऐसा क्यों होता है? दर्शन शास्त्र कहता है कि सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण प्रकृति में विद्यमान हैं। मनुष्य इसका सम्मिश्रण है, साथ ही मनुष्य के आचरण पर अर्जित व संचित गुणों का भी प्रभाव पड़ता है। इसके कारण सत्व-तम-रज के मिश्रण का प्रभावी व अप्रभावी में वितरण होता है। आनुवंशिकी का एक नियम 'प्रभाविता का नियम' कहलाता है, जिसके अनुसार उपलब्ध विकल्पों में से प्रभावी लक्षण प्रथम पीढ़ी में स्वयं को प्रकट करता है तथा अप्रभावी लक्षण दबा रहता है। 'पृथक्करण का नियम' कहता है की दोनों ही अप्रभावी लक्षणों का अवसर उपलब्ध हो तो अल्प अनुपात में ही सही वह अप्रभावी लक्षण भी प्रकट होने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेता है।

अनुवांशिकी के उपरोक्त नियमों से समाज जीवन की रचना की व्याख्या भी की जा सकती है। तमो गुण अप्रभावी तथा सत्व गुण प्रभावी रहने से समाज धारण, रक्षण ठीक होता है। मिश्रण होने पर भी सत्व व रजोगुण प्रभावी हो जाता है।

'जिसकी लाठी उसकी भैंस' से समाज कैसे चलेगा? बाहुबली प्रभावी होंगे तो जो वो कहेंगे वही होगा, सत्य की वाणी पर विराम लग जायेगा। जिन-जिन शर्तों से समाज में उच्छृंखलता, अराजकता पैदा हो सकती है, उन पर नियंत्रण का प्रयत्न करने पर ऐसे आसुरी वृत्ति के लोग उनके विरुद्ध 'मोरल पुलिसिंग' का नारा लगाकर लामबंद हो जाते हैं। अपने विकृत कथनों और

अश्लील कृतियों को आधुनिकता का जामा पहना कर युवा पीढ़ी को बरगलाते हैं। यह घात-प्रतिघात सर्वकाल में चलता है। चोरों की चले तो संविधान में चोरों के लिए दंडनीय अपराध रहने देंगे क्या?

व्यक्तिगत इच्छा स्वतन्त्रता के नाम पर स्वीकृत विधान के विपरीत आचरण स्वीकार नहीं है तो सनातन काल से सांस्कृतिक सत्य के रूप में स्वीकृत समाज मूल्यों को अपनी मौज में तोड़ने वालों के समक्ष झुकना कैसे संभव है?

देशकाल परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनीय बातों को स्वीकार करते हुए भी किसी विदेशी परंपरा का अनुकरण करना उचित नहीं है। अपने देश के अनुरूप उनके भावी प्रभाव का आंकलन करना आवश्यक होता है इसके लिए अन्यत्र के अनुभव उपयोगी होते हैं।

समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों के विपरीत आचरण के लिए खड़े हुए व्यक्ति या समूहों को केवल भावनात्मक आधार पर संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। क्रिया-प्रतिक्रिया से सार्थक परिणाम नहीं निकलता। तर्क सहित विचार तथा संवाद की व्यवस्था होना चाहिए। साथ ही किसी भी विचार के मण्डन की कसौटी क्या होगी? किसी बात के स्वीकार या अस्वीकार का आधार क्या है? मनुष्य में यह विवेक उत्पन्न करने की आयु विद्यार्थी काल है तथा उपयुक्त स्थान विद्यालय है तथा इसलिए जितने भी विचारक, शिक्षाशास्त्री तथा शिक्षा आयोग भी, इस बात की आवश्यकता प्रस्तावित करते हैं की विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का प्रावधान किया जाए।

सबकी सिद्धान्ततः सहमति तथा सदेच्छा के उपरान्त भी हम सफल क्यों नहीं हो रहे? नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम, प्रार्थना सभा के प्रावधान के उपरांत भी सफलता का प्रतिशत न्यून तथा द्विपीय प्रकृति का क्यों है। कारण है, पाठ्यक्रम शिक्षा विभाग द्वारा निर्मित कर विद्यालयों में लागू किया जाता है। प्रार्थना सभा में नैतिक पाठ के लिए आदेश निकलता है। कानून के डंडे से पाठ्यपुस्तकों के नैतिक पाठों का वाचन तो संभव है आचरण की श्रद्धा व सिद्धता उत्पन्न करना संभव नहीं। सबसे बड़ी गलती यहीं हो रही है। एक कहावत है की 'चावल भले ही बासमती हो, बनाने वाले घाट कर दें तो चावल बेचारे क्या करें?' मुख्य सचिव से नीचे ब्लॉक शिक्षा अधिकारी तक योजनाकार

एक आदेश दाता हैं। इसे लागू करने, सफल करने की जिससे अपेक्षा है वह अध्यापक है। एक उल्टा पिरेमिड बना हुआ है। प्राचीन ऋषि परंपरा के आख्यान, गुरु महिमा के व्याख्यान अत्यंत प्रेरक हैं किन्तु यह प्रेरणा शिक्षक में जगाने की क्या व्यवस्था है? मैं एक शिक्षा महाविद्यालय की कार्यशाला में 'नैतिकता का मूल्यांकन और मूल्यांकन की नैतिकता' विषय पर चर्चा के लिए गया। विषय पूरा होने के बाद प्रश्नोत्तर सत्र में एक प्राध्यापक ने चुभता हुआ सामयिक प्रश्न पूछा। उनका कहना था कि स्नातक तक की शिक्षा अन्यत्र प्राप्त कर विद्यार्थी शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए हमारे पास आता है। उसकी मनोरचना बन चुकी होती है, वह शुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से नौकरी प्राप्त करने के लिए आता है, 'शिक्षक' बनने के लिए नहीं। उसका इस पाठ्यक्रम के लिए भी चयन बौद्धिक लब्धि के आधार पर ही हुआ है और आगे अध्यापक भी इसी आधार पर बनना है। अतः उसका पूरा ध्यान 'कट ऑफ़ मार्क्स' कि सीमा रेखा से ऊपर रहने के लिए आवश्यक बौद्धिक तैयारी पर रहता है। उसके सामान्य ज्ञान या शैक्षिक विषय के निर्धारित पाठ्यक्रम में नैतिकता नहीं है। आप उसे आदर्श शिक्षक कैसे बना सकते हैं?

प्रश्न लम्बा और व्यथापूर्ण था। उत्तर का संधान अभी बाकी है। मुझे लगता है हमने वर्तमान शिक्षक को हमारी 'गुरु परंपरा' का 'क्लोन' मान लिया है। आदर्श भारतीय परिवार की संस्कार व्यवस्था का 'बीमा' हुआ मान लिया है। स्वल्पन की संभावना केवल बच्चे में है अतः उसे संस्कारित करने की सब चिंता कर रहे हैं। आज इस अवधारणा को बदलने की आवश्यकता है। नैतिक मूल्यों की स्थापना कर आदर्श समाज-रचना के लिए दीर्घ काल तक तीन आयामों पर कार्य करना होगा-

(क) शिक्षक -जिस प्रकार क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम के साथ शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को जोड़ा गया है, उसी प्रकार कक्षा 9 से भावी अध्यापक तैयार करने का पाठ्यक्रम प्रारम्भ करना चाहिए। इसके



संस्थान भी पृथक हो सकते हैं। यहाँ का पाठ्यक्रम IQ, EQ तथा SQ मापन के आधार पर निर्मित हो।

प्रत्येक विद्यार्थी को अध्ययन अवधि में किसी विद्यालय से सम्बद्ध किया जाये जहाँ वह विद्यार्थियों पर अपने प्रयोग कर सके। सतत मूल्यांकन व सामयिक मूल्यांकन IQ, EQ तथा SQ के आधार पर हो तथा अनुपयुक्त को बाहर करने की व्यवस्था हो। विद्यालयों के लिए किसी भी स्तर पर स्नातक से नीचे की अर्हता वाला अध्यापक न हो।

शिक्षकों का भी प्रतिवर्ष नैतिक मूल्यांकन ग्राम की वरिष्ठ जन समिति, विद्यालय प्रबंधन समिति, अभिभावक परिषद् द्वारा हो।

(ख) परिवार - विद्यालयों में परिवार प्रबोधन, अभिभावक प्रबोधन, नव दंपति शिविर, गोष्ठियाँ आदि आयोजित हों। बच्चों के आचरण-व्यवहार, परिवारों का वातावरण आदि पर चर्चा के पाठ्यक्रम बनें। बच्चे ग्राम या बस्ती के हैं केवल परिवार के नहीं, यह भाव आने पर प्राचीन समय की तरह से पुनः रोकना-टोकना-प्रोत्साहन प्रारम्भ होगा। पूरी बस्ती या ग्राम का सुरक्षा चक्र बालवृन्द को प्राप्त होगा। विद्यालय समय पश्चात् बस्ती में 'संस्कार केंद्र' खुलें तथा अभिभावक उसका खर्च वहन करें इसके लिए मन बनाना पड़ेगा। दादी-नानी बच्चों को संस्कार देने का कार्य सुगमता से कर

सकती हैं अतः इनका समूह बनाकर विद्यालय में उपयोग करना। शिशु वाटिका के प्रयोग इनके माध्यम से किये जा सकते हैं।

(ग) विद्यार्थी - विद्यालय में आने वाले विद्यार्थी को नैतिक बनाने के लिए प्रारम्भिक आधार है प्रार्थना सभा। कम से कम एक घंटे की प्रार्थना सभा होनी चाहिए। प्रार्थना सभा के प्रभावी कार्यक्रम बाल मन पर स्थायी प्रभाव करते हैं। प्रार्थना, सुभाषित, बोध कथा, प्रेरक प्रसंग, गीत, अनुभव कथन, समाचार समीक्षा आदि प्रवृत्तियों का समावेश हो। योग, ध्यान आदि का प्रावधान हो। प्रेरक प्रसंग, जीवनियाँ, इतिहास ग्रन्थ, संस्कृति बोध आदि से सम्बंधित पुस्तकों के पठन की व्यवस्था हो। श्रमानुभव, सेवा-संस्कार की व्यवस्था हो।

उपरोक्त बातें सांकेतिक हैं। विद्यार्थी स्तर पर नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर पर्याप्त शोध व पाठ्यक्रम निर्माण हुआ है, हो रहा है। शिक्षक व परिवार स्तर पर भी इसकी कार्ययोजना के लिए कार्यशाला, विचार गोष्ठी, परिचर्चा की आवश्यकता है। विद्वान् लोग इस पर और विचार कर एक समग्र, समेकित, सम्पूर्ण योजना की रूपरेखा का आन्दोलन शैक्षिक महासंघ के माध्यम से प्रारम्भ हुआ है। इस समुद्र मंथन में से अंततः अमृत निकलेगा ही, ऐसी आशा है। □

(प्रधानाध्यापक, रा.मा.वि. लोहागल (अजमेर))

सक्षम हो भारतीय भाषाओं के विद्यालय

□ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी



सरकार को चाहिए कि वह भारतीय भाषाओं को रोजगार की भाषा बनावें। जिससे प्रतिभावान विद्यार्थी भी भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना पसंद करें। अभी रोजगार की असुरक्षा के कारण हिंदी छोड़, अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की ओर दौड़ रहे हैं। भाषा की जटिलता के कारण बच्चों की विषय पर अच्छी पकड़ नहीं बन पाती। कुछ बच्चे उच्च वेतन की नौकरी पाने के योग्य हो जाते हैं मगर मौलिक ज्ञान के सृजक नहीं बन पाते। यही कारण है कि मौलिक ज्ञान के उत्पादन में विश्व में भारत की भूमिका नगण्य है। हमारे विश्वविद्यालय उपाधियां बांटने के केन्द्र बन कर रह गए हैं। उनके अनुसंधान को विश्वस्तर पर मान्यता नहीं मिल पाती। वर्तमान सरकार की पहली प्राथमिकता भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा का त्वरित विकास करना होना चाहिए।

कोई मुझसे पूछे कि भारत की शिक्षा नीति के सम्मुख सर्वाधिक करणीय कार्य क्या है तो मैं भारतीय भाषाओं के विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की तुलना में अधिक सक्षम बनाने पर बल दूंगा। देश स्वतन्त्र होने के साथ ही देश में अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त हो जाना चाहिए था, शर्म कि बात है कि समय गुजरने के साथ शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का विस्तार होता गया। आज अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की बाढ़ सी आ रही है। अब तक निजी क्षेत्र में ही अंग्रेजी माध्यम विद्यालय खुलते रहे हैं मगर अब, वोटों की राजनीति से प्रभावित, राज्य सरकारें भी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय खोल कर गौरवान्वित अनुभव करने लगी है।

घाटे में रहे हैं अंग्रेजी अपनाकर

विश्व का कोई देश, विदेशी भाषा का उपयोग कर उन्नति नहीं कर सका है। जर्मनी, जापान, कोरिया चीन व रूस आदि देशों ने उन्नति अपनी भाषा में शिक्षा देकर की है। भारत ने आजादी के बाद भी अंग्रेजी को बनाए रखा। गलत नीतियों के कारण स्वतन्त्रता के बाद अंग्रेजी का प्रभाव कम होने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। हमारे तत्कालीन कर्णधारों का कहना था कि अंग्रेजी को अपना कर हम तेजी से आगे बढ़ेंगे मगर हुआ उल्टा ही। देश के विकास की गति उतनी नहीं बढ़ सकी जितनी कि मातृभाषा अपनाने वाले देशों में बढ़ी। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या अंग्रेजी के अपनाने का विकास पर विपरीत प्रभाव हुआ ? क्या शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को बनाए रखना हमारी भूल नहीं थी ?

अब यह स्पष्ट हो गया है कि अंग्रेजी को अपनाने के पीछे देशहित नहीं होकर सत्ता में बैठे लोगों के अपने स्वार्थ थे। वे अंग्रेजी के ज्ञान के रोब द्वारा आम जनता से अपने को ऊँचा प्रदर्शित कर अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने में सफल रहे। अंग्रेजी के बल पर अपनी संतानों को सत्ता में प्रविष्ट कराते रहे हैं। यह सिलसिला आज भी जारी

है। वर्ना जिस देश की 2 प्रतिशत जनता भी अपने जीवन में अंग्रेजी का उपयोग नहीं करती वहाँ लोकसेवकों के चयन में अंग्रेजी को भारतीय भाषाओं से अधिक महत्व देने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। न्यायालय में अंग्रेजी को बनाए रखकर न्याय की जगह अन्याय करने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता।

आज अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की बढ़ती मांग के पीछे अंग्रेजी की महानता नहीं लोगों की मजबूरी है। अंग्रेजी नौकरी दिलाने की भाषा बनी हुई है। नौकरी के लालच में ही लोग अपने बच्चे को अधिक शुल्क देकर भी अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में पढ़ाना पसन्द कर रहे हैं। मूँह मांगा पैसा मिलने के कारण अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के पास अच्छे संसाधन हैं जबकि भारतीय भाषा माध्यम के विद्यालय साधनों को तरसते हैं। अंग्रेजी माध्यम की पुस्तकों के मूँह मांगे दाम मिलने के कारण उनका प्रकाशन अधिक हो रहा है जबकि भारतीय भाषाओं की अच्छी पुस्तकें भी पाठकों तक नहीं पहुँच पा रही हैं।

भारतीय भाषाओं के साथ यह भेदभाव सत्ता में बैठे अंग्रेजी परस्त अधिकारियों की मानसिकता के कारण हो रहा है। ऐसा नहीं होता तो हिन्दी समाचार पत्रों की प्रसार संख्या अधिक होने पर भी उनकी विज्ञापन दर कम नहीं होती। जापानी से हिन्दी में अनुवाद करने वाले को अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले की तुलना में आधा भुगतान नहीं किया जाता। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित बच्चों की पत्रिका की प्रेस विज्ञप्ति अंग्रेजी में तैयार नहीं होती। हिन्दी व भारतीय भाषाओं के पदों पर कार्य करने वाले अधिकारियों द्वारा अंग्रेजी में कार्य नहीं किया जाता। संघ लोकसेवा आयोग का प्रयास रहता है कि हिंदी माध्यम से परीक्षा देने वाले अधिक अंक प्राप्त नहीं कर पावें। भारत में अंग्रेजी में प्रश्नपत्र बना उसका भाँडा हिन्दी अनुवाद कराने का क्या तुक है।

हिंदी जैसी वैज्ञानिक भाषा व देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि उपलब्ध होने पर भी अवैज्ञानिक भाषा अंग्रेजी को मातृभाषा का स्थान दिया जाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता। बच्चे की क्षमता का अधिकांश भाग भाषा

समझने में ही खर्च हो जाता है फिर भी अभिव्यक्ति की वह दक्षता नहीं आ पाती है जो मातृभाषा में सहज ही प्राप्त हो जाती है।

अंग्रेजी का विरोध नहीं

अंग्रेजी का विरोध करना इस आलेख का उद्देश्य नहीं है। अंग्रेजी बच्चों को सिखाई जाये मगर एक अतिरिक्त भाषा के रूप में। अंग्रेजी जानकारों की टीम तैयार कर उसे अनुवाद के कार्य में लगाया जा सकता है। विश्व में ज्ञान कहीं भी उत्पन्न हो उसे तुरन्त भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराने की उचित व्यवस्था होनी ही चाहिए। हम अभी तक अनुवाद की अच्छी व्यवस्था तैयार नहीं कर पाएँ हैं। अनुवाद की थोड़ी बहुत व्यवस्था है तो वह ऐसा अनुवाद करती है जो अंग्रेजी से भी कठिन होता है। संघ लोकसेवा आयोग के प्रश्नपत्रों के प्रसंग में सारा देश अनुवाद की हास्यास्पद स्थिति देख चुका है। वर्तमान सरकार से बहुत उम्मीदें हैं मगर नौकरशाही पर अंकुश लगा सके तब ही कुछ हो सकता है। नौकरशाही ने तो प्रधानमंत्री को भी अंग्रेजी बोलने के लिए तैयार कर लिया लगता है।

गरीबों के विद्यालय

देश के स्वतन्त्र होने के लगभग 7 दशक बाद हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के विद्यालयों का अर्थ गरीबों के विद्यालय होकर रह गया है। ऐसा इनकी लचर व्यवस्था के कारण हुआ है। सरकार की बेरुखी के कारण ऐसा हुआ है। यदि हम अपने देश को सचमुच में विश्व शक्ति बनाना चाहते हैं तो हमें भारतीय भाषाओं को समुचित सम्मान देना होगा। आज सम्पूर्ण विश्व में दीर्घजीवी विकास की बात चल रही है तो भारतीय संस्कृति की मांग भी बढ़ रही है। योग को विश्व स्तर पर मिला समर्थन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। त्याग के साथ संयमित उपभोग करने पर विश्वास करने वाली भारतीय संस्कृति दीर्घजीवी विकास की पोषक रही है। संस्कृति का भाषा से बहुत सम्बंध होता है। भारतीय भाषाओं के विद्यालयों को सक्षम बनाकर ही हम भारतीय भाषाओं को बचा सकते हैं।

आज सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों के बच्चे अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उनको सरकारों का अप्रत्यक्ष संरक्षण मिल रहा है और हिंदी व भारतीय भाषाओं के विद्यालय उनकी उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं। सरकार को चाहिए कि वह भारतीय भाषाओं को रोजगार की भाषा बनावें। जिससे प्रतिभावान विद्यार्थी भी भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना पसंद करें। अभी रोजगार की असुरक्षा के कारण हिंदी छोड़, अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की ओर दौड़ रहे हैं। भाषा की जटिलता के कारण बच्चों की विषय पर अच्छी पकड़ नहीं बन पाती। कुछ बच्चे उच्च वेतन की नौकरी पाने के योग्य हो जाते हैं मगर मौलिक ज्ञान के सृजक नहीं बन पाते। यही कारण है कि मौलिक ज्ञान के उत्पादन में विश्व में भारत की भूमिका नगण्य है। हमारे विश्वविद्यालय उपाधियां बांटने के केन्द्र बन कर रह गए हैं। उनके अनुसंधान को विश्वस्तर पर मान्यता नहीं मिल पाती। वर्तमान सरकार की पहली प्राथमिकता भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा का त्वरित विकास करना होना चाहिए। यह एक कठिन कार्य है मगर इसके अतिरिक्त विकल्प भी नहीं हैं। केवल दिखावे से यह कार्य होने वाला नहीं है, सूझबूझ वाला नेता ही सबको साथ लेकर भारतीय भाषाओं में शिक्षा व्यवस्था में आत्मविश्वास उत्पन्न कर सकता है।

पुनः मूल्यांकन हो त्रिभाषा सूत्र का

हमने देश की भाषा की राजनीति का हल शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र के रूप में खोजा। तात्कालिक राजनैतिक स्थिति में त्रिभाषा सूत्र ही एक मात्र विकल्प रहा हो मगर अब स्थिति बहुत बदल गई है। हमें शिक्षा के ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे। भाषा शिक्षण के एक तय ढाँचे से बाहर निकल कर एक विस्तृत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। संस्कृत निश्चित रूप से विश्व की अधिकांश भाषाओं की जननी रही है। भारत में चार भाषा परिवारों की भाषाएं बोली जाती हैं। भारतीय भूभाग की

विशालता को देखते हुए चारों भाषा परिवारों का भारत में विकसित होना स्वाभाविक है। 2013 में प्रकाशित रूसी वैज्ञानिकों के एक शोध से इस बात की पुष्टि हुई है। मानव माइटोकोण्ड्रिया के डीएनए पर उपस्थित आर.एन.ए. आनुवंशिक चिह्न के प्रसार के आधार पर जर्नल ऑफ लेंग्वेज रिलेशनशिप में प्रकाशित शोधपत्र में कहा गया है कि भारतीय-यूरोपीय भाषा समूह की उत्पत्ति भारत में ही हुई थी। अब तब भारतीय-यूरोपीय भाषा समूह का प्रसार पश्चिम से पूर्व की ओर माना जाता रहा है।

आज की वैज्ञानिक प्रगति का मूल आधार भाषा ही है। भाषा के माध्यम से अर्जित ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचा पाने के कारण ही मानव इतनी उन्नति कर सका है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए हमें भारतीय भाषाओं के अच्छे ज्ञाताओं के साथ ही वर्तमान विश्व की प्रमुख भाषाओं के अध्ययन को भी बढ़ावा देना होगा। जैसे तरल, जटिल मार्ग छोड़ सरल मार्ग की ओर बहता है उसी तरह भाषा भी जटिल से सरलता का मार्ग खोजती रही है। हिंदी की उत्पत्ति उसी का परिणाम है। संस्कृत को जनभाषा बनाने की भावुकता पालना उचित प्रतीत नहीं है। तृतीय भाषा के रूप में सभी विद्यार्थियों को संस्कृत पढ़ाकर हमने कुछ भी प्राप्त नहीं किया है। इससे अच्छा तो यह होता कि हम संस्कृत विद्यालयों को इतना सक्षम बना पाते कि वहां से संस्कृत के अच्छे विद्वान निकल पाते। विश्व का प्राचीनतम ज्ञान संस्कृत में है उसे भारतीय भाषाओं में लाना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। विज्ञान या अन्य विषय के साथ संस्कृत अध्ययन का लचीला पथ उपलब्ध कराना चाहिए। विज्ञान विभागों को संस्कृत ज्ञाता उपलब्ध कराने पर भी विचार किया जाना चाहिए। सबको सब कुछ सिखाने की बजाय जो सिखाया जाय सार्थक सिखाया जाये की नीति पर चलना होगा। प्रमाण पत्र के स्थान पर ज्ञान को महत्व देना होगा। □

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में नये आयाम

□ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल



पहली से आठवीं तक की कक्षा में बिना परीक्षा के अथवा परीक्षा परिणाम कुछ भी हो, उसे दरकिनार, कर यों ही अगली कक्षा में चढ़ा दिये जाने की नीति भी अत्यंत घातक सिद्ध हुई है। इससे विद्यार्थियों में पढ़ने की आदत ही समाप्त होते हुये दिखाई पड़ी है। इस नीति को लागू करने के पीछे चिंतन तो यह था कि कच्ची आयु के बच्चों पर परीक्षा का दबाव न बने। साथ ही स्तर बनाये रखने के लिये प्रावधान यह भी था कि साल भर पढ़ाई के दौरान उनका सतत मूल्यांकन चलता रहे। परंतु यह निष्ठापूर्वक किया नहीं गया और नीति असफल हो गई। इस दृष्टि से यह बात स्वागत योग्य है कि केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (कैब) ने अब इस नीति की समीक्षा करने की सिफारिश मानव संसंधान मंत्रालय से की है।

भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय में माध्यमिक शिक्षा तक के लिये अलग ही प्रभाग है जो देश में चौदह लाख से अधिक सरकारी स्कूलों, नवोदय विद्यालय आदि की निगरानी करता है और उसके द्वारा बनाई गई नीतियाँ राष्ट्रीय स्तर पर सभी स्कूलों में लागू होती हैं। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के बुनियादी ढाँचे में अभूतपूर्व वृद्धि तो हुई है परंतु स्तर में तो विशेषतौर पर सरकारी विद्यालयों में, गिरावट ही आई है। शिक्षा बीच में ही छोड़ देने वालों के आंकड़े भी चौंकाने वाले हैं। कक्षा एक से पांच के बीच स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर 27 प्रतिशत है, जो आठवीं तक आते-आते 40 और दसवीं तक 49 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। स्तर का हाल यह है कि कम से कम सामान्य सरकारी विद्यालयों में तीसरी कक्षा के छात्र भी पहली कक्षा की पुस्तकें पढ़ने में असमर्थ पाये गये हैं और जोड़ने घटाने के साधारण सवाल को हल करने में भी उनके पसीने छूटने लग जाते हैं। दसवीं कक्षा तक ड्राप आउट दर बढ़ने का यह एक स्पष्ट कारण है। इसीलिये इस दर के बढ़ने के सभी कारणों तथा माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा की अन्य विसंगतियों का विश्लेषण समीचीन रहेगा।

गिरावट के अनेकों कारणों में प्रथम तो यही है कि नये योग्य शिक्षक ही बहुत कम मिल पा रहे हैं

क्योंकि स्वयं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत शर्मनाक गिरावट है। परंतु उसके कारणों पर प्रकाश डालना तो इस लेख का विषय नहीं हो सकता, अतः इसे छोड़ कर आगे बढ़ना पड़ेगा। हाँ! यहां इतना तो लिखना पड़ेगा कि इस वर्ष केन्द्रीय शिक्षक योग्यता परीक्षा में बैठने वाले कुल 690,000 उम्मीदवारों में 13 प्रतिशत ही सफल हो पाये। कमोबेश यही हाल राज्य सरकारों द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली ऐसी ही परीक्षाओं में रहता है। यह एक कारण हो सकता है कि अध्यापकों के असंख्य पद रिक्त पड़े हैं यद्यपि इसके लिए सरकारों की अपनी लापरवाही भी उत्तरदायी है। जो नये अध्यापक नियुक्त भी हो रहे हैं उनमें भी उच्च शिक्षा के स्तर में गिरावट के कारण योग्यता का अभाव ही रहता है। कोई आश्चर्य नहीं कि सर्वेक्षणों में ऐसा पाया भी गया है।

पहली से आठवीं तक की कक्षा में बिना परीक्षा के अथवा परीक्षा परिणाम कुछ भी हो, उसे दरकिनार, कर यों ही अगली कक्षा में चढ़ा दिये जाने की नीति भी अत्यंत घातक सिद्ध हुई है। इससे विद्यार्थियों में पढ़ने की आदत ही समाप्त होते हुये दिखाई पड़ी है। इस नीति को लागू करने के पीछे चिंतन तो यह था कि कच्ची आयु के बच्चों पर परीक्षा का दबाव न बने। साथ ही स्तर बनाये रखने के लिये प्रावधान यह भी था कि साल भर पढ़ाई के दौरान उनका सतत मूल्यांकन चलता रहे। परंतु यह निष्ठापूर्वक किया नहीं गया



और नीति असफल हो गई। इस दृष्टि से यह बात स्वागत योग्य है कि केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (कैब) ने अब इस नीति की समीक्षा करने की सिफारिश मानव संसाधन मंत्रालय से की है।

बच्चों को अत्यधिक 'होम वर्क' देने का चलन भी ठीक नहीं रहा है। इससे विद्यालय शिक्षकों का कार्य भार काफी सीमा तक अभिभावकों पर ही स्थानांतरित हो जाता है और बच्चे को घर पर खेलने आदि के लिये भी पर्याप्त समय नहीं मिल पाता। अंततः यह प्रथा उसके व्यक्तित्व के विकास में मौलिकता का उद्भव रोकती है। प्रसन्नता की बात है कि केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड में भी इस समस्या के बारे में चिंतन मनन चल रहा है।

स्तर में गिरावट की दृष्टि से तथा ड्राप आउट दर कम करने के लिये आवश्यक है कि अंग्रेजी के पठन-पाठन तथा माध्यम के रूप में उसके प्रति दुराग्रह पर भी गंभीरता से सोचा जाये। यह तो सर्वमान्य सत्य है कि प्रारम्भिक शिक्षा के लिये मातृभाषा से बढ़ कर दूसरा माध्यम हो ही नहीं सकता। कुछ एक देशों को छोड़ कर ऐसा है भी नहीं। चीन, जिसका उदाहरण अब भारत में बहुधा दिया जाता है, में अंग्रेजी का अध्ययन चौथे दर्जे से पूर्व प्रारम्भ नहीं किया जाता। आगे भी उसे केवल एक विषय के रूप में ही पढ़ाया जाता है, उसका व्यवहार माध्यम के रूप में बिलकुल नहीं किया जाता। इस पद्धति से उच्चतम कक्षाओं में विज्ञान आदि विषयों को भी समझने में कोई कठिनाई नहीं आती। स्वयं लेखक के साथ भी ऐसा ही रहा है जिसने केवल स्नातक स्तर से ही अंग्रेजी माध्यम अपनाया। ज्ञातव्य है कि अंततः वह एक विश्वविद्यालय से रसायन के प्रोफेसर पद से निवृत्त हुआ और इंडियन साइंस कांग्रेस में रसायन खंड का अध्यक्ष भी निर्वाचित हुआ। देश और विदेश में अनेकों सेमिनार में भी उसने भाग लिया।

अभी-अभी तृतीय भाषा के रूप में संस्कृत के अध्ययन के भारत सरकार के निर्णय के प्रति भी लेखक अपने विचार प्रकट करने से अपने को नहीं रोक पा रहा है। ज्ञातव्य है कि 1968 में लागू हुये त्रिभाषा सूत्र के अनुसार

हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी, अंग्रेजी और भारत की अन्य मान्य 21 भाषाओं में से कोई एक पढ़ाई जानी होती थी जबकि अहिंदी प्रदेशों में स्थानीय भाषा, अंग्रेजी और हिंदी। इसके पीछे के चिंतन का आधार समस्त भारत को एक सूत्र में बांधने का था। इससे हिंदी का ज्ञान तो अहिंदी भाषियों को होता ही था, उन्हें इस बात की भी नाराजगी न रहती थी कि हिंदी भाषी उनके किसी भी प्रदेश की भाषा का ज्ञान नहीं प्राप्त करने को स्वतंत्र थे। अधिकतर हिंदी राज्यों ने इसमें थोड़ी बेइमानी अवश्य की। हिंदी के अतिरिक्त मान्य अन्य 21 भाषाओं में संस्कृत तथा अंग्रेजी भी हैं और उनके विद्यालयों अथवा स्थानीय सरकारों ने हिंदी से इतर किसी वर्तमान भाषा के विकल्प में संस्कृत को ही चुन लिया जिसके कारण इस उद्देश्य की पूर्ति न हो सकी। आवश्यकता तो इस बात की थी कि त्रिभाषा सूत्र को पूरी निष्ठा और उसकी आत्मा के अनुसार लागू किया जाता परंतु आज के निर्णय ने तो संस्कृत पर मुहर ही लगा दी है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि अब अहिंदी राज्यों में हिंदी अध्ययन की स्थिति क्या होगी?

यह सत्य है कि संस्कृत में ही भारत के पारंपरिक ज्ञान का भंडार है जिसे आज के विद्यार्थी को देना नितांत आवश्यक है। किसी भी देश की अपनी संस्कृति की जड़ें उसके पारंपरिक ज्ञान में ही होती हैं और उनसे अछूता नागरिक उस देश को गौरव नहीं प्रदान कर सकता। इस दृष्टि से तो सरकार का निर्णय उचित लग सकता है परंतु इस उद्देश्य की पूर्ति तो मूल त्रिभाषा सूत्र की आत्मा को अक्षत रखकर और उसके कलेवर में थोड़ा सुधार कर किया जा सकता है।

जैसा कि लिखा जा चुका है, वर्तमान में (अर्थात् त्रिभाषा सूत्र में भी) अंग्रेजी पर अनावश्यक जोर दिया जा रहा है। क्या यह नहीं हो सकता कि छठीं कक्षा तक विद्यार्थी हिंदी, संस्कृत और कोई एक अन्य भारतीय भाषा पढ़ें तथा सातवीं से संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी पढ़ने लगे। इसी खाँचे में अहिंदी राज्यों के लिये भी त्रिभाषा सूत्र को ढाला जा सकता है। इससे संस्कृत का प्रारंभिक ज्ञान विद्यार्थी को हो सकेगा और आगे की कक्षा में हिंदी

पाठ्यक्रम में ही चुने हुये संस्कृत श्लोकों एवं नीति कथनों (तथा कथाओं) आदि का समुचित समावेश कर उन्हें भारत के पारंपरिक ज्ञान से परिचित कराने का उद्देश्य पूरा हो सकता है।

जहां तक अंग्रेजी का प्रश्न है, सातवीं से ग्यारहवीं तक के अध्ययन से भाषा का काम चलाऊ ज्ञान अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है। साथ में छठीं में सप्ताह में 1-2 पीरियड के माध्यम से उन्हें अक्षर ज्ञान कराया जा सकता है। इससे निश्चित ही विद्यार्थी पर भाषा अध्ययन का भार अनावश्यक रूप से नहीं बढ़ेगा। स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में इसी प्रकार से सप्ताह में एक दो पीरियड में अतिरिक्त विषय के रूप में अंग्रेजी भाषा का अध्ययन चालू रखा जा सकता है।

स्मरणीय है कि कम से कम गत साठ के दशक तक तो लेखक ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में स्नातक कक्षाओं में इस तरह से अंग्रेजी का पठन-पाठन अतिरिक्त (वैकल्पिक) विषय के रूप में चालू रखे जाने की व्यवस्था देखी थी।

अंग्रेजी के थोड़ा अधिक ज्ञान की आवश्यकता उच्चतर ज्ञान के लिये ही होती है और उपरोक्त व्यवस्था से यह संभव हो जायेगा। लेखक स्वयं का उदाहरण दे चुका है परंतु तर्क को अधिक बल प्रदान करने के लिये दो और उदाहरण उपयुक्त रहेंगे। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में उनके एक सहकर्मी ऐसे थे जो रसायन में डॉक्टरेट के लिये जर्मनी गये थे। वहां केवल तीन माह के भाषा अध्ययन से उन्हें इतना जर्मन ज्ञान हो गया था कि न केवल वे समस्त शोध कार्य जर्मन माध्यम से कर सके बल्कि उन्होंने अपना शोध प्रबंध भी जर्मन में लिखकर डिग्री प्राप्त की। एक अन्य उच्च पदस्थ व्यक्ति का ज्ञान लेखक को है जिन्होंने चीन में केवल 2-3 वर्षों तक रह कर और स्वाध्याय से स्थानीय भाषा इतनी सीख ली कि उसी में एक पुस्तक की रचना कर सके।

निश्चित ही अंग्रेजी पर से अनावश्यक जोर हटाना चाहिये और त्रिभाषा सूत्र की आत्मा को अक्षत बनाये रखा जाना चाहिये। □

(पूर्व अध्यक्ष-रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)



Bharat is not simply a geo political entity, it is a 'Value'. When we look at the identity of other nations of the world, we find that their identity lies either in language or geography. England for English speaking, Germany for German speaking and so on. Some even keep religion as their identity, like Pakistan. But the identity of Bharat is neither language, nor geography nor religion, it is something else. The identity of Bharat is a Sanskriti, a Culture, which is the direct outcome of the Vedopanishadic knowledge tradition. Is there any other nation in the world, which is one nation on the basis of a Culture, which is based on a knowledge tradition? And what is more, it is the oldest knowledge tradition and Sanskriti of the world.



New Bharat, New Education

□ Dr. TS Girishkumar

To my mind, Bharat has become free only with this new government. Bharat had been under foreign rule for a long time, firstly the Muslims invaded and subsequently settled in Bharat with their Sultanates for some eight hundred years, then the Europeans, primarily the British who subjugated our nation for some two hundred years and after 1947, it was the congress for some near seventy years barring a brief spell in between. Hence, for all of us, this should be a new beginning in every field, especially so, in the field of education.

Damages done

When one looks back, the damages done in the field of education by the foreign rulers are irredeemable. Something like a thousand and three hundred years of continuous destruction is not something easy to redeem. This makes an attempt to make corrections a long time as well as huge task that demands continuous as well as tirelessly ongoing effort. Apart from the outsiders, our own brothers with ideologies alien to Bharat had also added fuel to fire in a free flowing manner in

post 1947 period. Primarily this comes from the Communists and the intellectual development after Marx that took roots in Europe apart from the 'new scientific' temper developed in Europe after Martin Luther's protest against the Catholic Pope. These are still ongoing, unhindered in Bharat, especially in the area of higher education.

Damages done by outsiders may be glaring and evident from their callous expressions, which may be understood with lesser effort, but the damages which are getting done from present European Philosophical tradition are latent, underlying, though be unintentional from the part of the thinkers, but can be made a vicious phenomenon by minds with nefarious ends. This is going to be a subtle affair, but it calls for urgent attention from careful minds. Let me try to sketch some frames to this. Nonetheless, this phenomenon of contemporary European philosophy has a double edge, one, it naturally can inflict Bharatiya society to destruction, and two, it can be effectively used by minds with vested motives.

Philosophy, in most places, are either neglected or sidelined perhaps every where in the world, where Bharat is no exception. But, on an end analysis, it is thoughts that finally matter to any

human existence, and societies are patterned based on human thinking. Contemporary society seems to put much premium on science and technology, and this over-enthusiasm resulted in side lining some 'non-productive' subjects such as Philosophy. This indeed has long lasting impacts with any society, especially with Bharatiya society which has its edifice on the Vedopanishadic Philosophy.

There are some differences between European Philosophy and Bharatiya Darsana. European Philosophy is mostly individual speculations, and has breaks from one to another on a routine. Mostly the new cancels the erstwhile, something else appears subsequently to nullify the old, and the process goes on. In Bharat, the process had been a continuation, as one begins from the other by not nullifying the erstwhile, and the new comes in efforts to strengthen the old. We do not have breaks. Bharatiya Darsana Parampara does not belong to individual speculations as it is in Europe, but it belongs to groups of thinkers whose methodology is often trans-sensory. Cognition and speculation for

European Philosophy, and Experience (Anubhava) and Yogaja (Yogic Perception) for Bharatiya Parampara becomes a marked difference. The Epistemology is another Cardinal difference between European Philosophy and Bharatiya Darsan. Bharat has an Epistemology of co-existence while Europe maintains an Epistemology of difference. As a result, we actually see co-existence in Bharat, we see people with varying language and varying traditions co existing, we see the Hindu Dharma with so many varying faith systems and rituals existing as just one Dharma and so on. While in Europe, we see societies drawing difference from one another and longing to become separate.

Now, in contemporary European Philosophy, thoughts are put more into individuals and their individual predicaments. The 'other' always remains as the other only, and there is hardly any device to get into the other. From this we have Existentialism, Phenomenology, Positivism, Linguistic Philosophy and so on. So many new thoughts keep coming up, and there hardly is any sense of direction, are

where they going and where are they taking us? Obviously, the only possible ultimate direction ought to be directed to the Ultimate Reality, which they do not and cannot have. Just take some examples of the Philosophising done these days: on a closer analysis, one can easily understand as a matter of common sense that they are usually divisive thoughts. Subaltern Studies, Feminism, or even individual freedom etc. ultimately results in creating isolated, island like individuals, where co-existence gets jeopardised.

In Bharat, we still do carry the luggage of European Philosophy so much in the name of 'Western Philosophy'. Bharatiya Darsana is taught under the name of 'Indian Philosophy', but I have not seen many efforts from fellow teachers to show the intricacies lying within them and how divisive European Philosophy can be. Here, a total re-structuring must be done, with some very deft hands. Damages done at the level of thinking is still an ongoing phenomenon, and no remedy is at sight as of now.

The Concept of Bharat

It is necessary to form a concept of Bharat to think in terms of what ought to be Bharatiya education. It is only with a proper concept of Bharat that one can attempt to envisage any future things. My teacher Late Dr. Harsh Narain of Lucknow used to say, "Mulyam Vai Bharatam, Na Syad Desamatram Na Bharatam". Bharat is not simply a geo political entity, it is a 'Value'. When we look at the identity of other nation of the world, we find that their identity lies either in language or geography. England for English speaking, Germany for German speaking and so on. Some even keep religion as their



identity, like Pakistan. But the identity of Bharat is neither language, nor geography nor religion, it is something else. The identity of Bharat is a Sanskriti, a Culture, which is the direct out come from the Vedopanishadic knowledge tradition. Is there any other nation in the world, which is one nation on the basis of a Culture, which is based on a knowledge tradition? And what is more, it is the oldest knowledge tradition and Sanskriti of the world. It is simple as it is, and complicated in its co-existing intricacies.

New Education of New Bharat

Undoubtedly, the new education of New Bharat must be based on this Bharatiya Sanskriti. To base education on Sanskriti, it must begin from the Vedopanishadic knowledge tradition. This process should begin from smaller classes onwards, very systematically, educating a child through stages and steps. As the higher classes come, we can make the child enter more into the knowledge tradition and Sanskriti. We need to build up citizens of Bharat, not people with smaller linguistic or regional identities. The Sanskrit drama 'Mudra Rakshasam' narrates the story of Acharya Vishnu Gupta or Chanakya. In that play, there is a speech given by Chanakya to the students who are attending a convocation of graduates at Takshasila. Chanakya says that you have come here as Dravids, Magadheyas, Gandharas, Kaliingis, Angis, Bangis and the like, But now you are going back just as Bharatiyas'. Do I need to speak anything more about how new education in Bharat ought to be?

We should make the students aware of what it is to be a Bharatiya. We also should make our



students aware of what Dharma is. We should make the students aware of what their ancestors were like. They should know what the Vedas, Upanishads, Vedangas are, and what the methodology used by the ancient Bharatiya Acharyas used to be, and how they acquired so much of knowledge in all areas of knowing. It must be with this base that we should teach our future generation in whatever European knowledge needed. What I wish is for a Bharatiya edifice, upon which any other knowledge is to be provided. And what we do not have today is that Bharatiya foundation which shall go long way in the making of Sanskaris.

Naturally, the initiation to this, in my mind, comes from Philosophy. Let the departments of Philosophy train people in knowing what used to be Bharatiya methodology of knowing, and how distinct they are from European Philosophies. Let them work out whatever differences in details, and present to the students, for their own evaluation of knowing both. Let us know that thinking becomes fundamental to any human existence, and thinking what and how shall make all kinds of differences. In Gujarat when one asks how you are, the answer is usually 'Santi Che'. The answer is that I am in

peace. And this is precisely what we aspire from Bharatiya societies. We do not want agitated minds who remain confused, and who confuse others. Citizens should have some clear immediate goal, and the final or end goal. For us, the end goal or final goal to all activities is very clearly spelt out: whatever one does, the end goal shall be 'Moksha'. As age puts in, as we go on in life performing our distinct duties, we have to be nearing the end goal which is nothing other than Moksha.

Thus the new education must provide an edifice which is the Vedopanishadic knowledge tradition based Sanskriti, and a clear ultimate goal which is Moksha apart from many immediate goals to go forward. Our fortune lies in the fact that we do not have to create any new knowledge as they are all already done by our ancestors. But our misfortune is that we have no way of knowing them through short cut. This makes me say, that there is no shortcut to Bharatiya Sanskriti, Dharma and Vedopanishadic knowledge tradition. And there is no shortcut to Hindu Dharma, there is also no shortcut to become Bharatiya. □

(Professor of Philosophy,
The Maharaja Sayajirao
University of Baroda)

Education System for Growing India

□ Dr. A. K. Gupta



The world looks towards India to lead and provide right direction for development of self spiritually and physically by combination of ancient and modern teachings. We should learn from teachings of best of our idols- Guru ji in Drishti aur Darshan. Experiments with education system combined with malicious practices have destroyed many dreams. Distraction has been observed among youth for Engineering, Management and other traditional courses which do not provide appropriate social recognition i.e. employment which can lead to their social life. Mushrooming growth of educational institutions without proper planning and objectives leads us nowhere.

Education leads from darkness of illiteracy to brightness of intellect. The process is slow but definite moving in right direction. India has remained leader of the world for its well known achievements since ancient time. The time is just right to rethink about its education policy for growing India. Education consists of mainly what we have unlearned- Mark Twain. There are many challenges posed before our motherland to find correct way to move in right direction. In recent past Education system has seen many changes mostly to make our citizens as serving our so called masters. The things taught in school and colleges are not education, but the means of education- Emerson. It is very necessary to observe changes in the society and its future projections.

We should focus on devising mechanism in Education system so as to fulfill our needs. Growing population poses a great challenge for every policy being framed. Increasing unemployment with the present education system, Inequality among gender and different social strata. Lagging behind in development, may it be research or otherwise, natural development of human beings with the age and geographical diversities etc may be talked about while formulating new or modifying present education system. Education must teach the student his duties in life. Truth always prevails, but speaking truth needs courage when one does so honours are natural- Guru ji in Bodh Katha.

Overall scenario in education sector, a decade ago, can be seen like: Education in girls has increased more at primary level. So far as funding is concerned Government share has increased

when compared with fee share. Literacy rate was observed more for males as compared to females. There is sharp decline in enrolments when we move from primary (11.36 Crores) to higher education (0.77 Crores). Scenario for number of institutions is not different e.g. for primary education it is 6.41 Lacs, at college level this is 7782 (for general education), 2124 for professional education) and 244 for National level institutions. Among girls inclination has shifted from Arts to Commerce at UG & PG level. Enrolment has increased more at primary level than at Higher level. Increase in teachers is insignificant at all levels in particular at higher / professionals education. Among youth i.e. in age group of 20-24 years, only five percent are trained. (Ref:- India 2003, Observer Research Foundation, Delhi). This itself shows our weaker segments where we need to focus. Students should not be looked different than other persons in the society. Student life is full of ups and downs, what one needs is an ideal example to follow and find right path- Guru ji in Yuva.

Building human work force is very important to make our nation stronger. It is evident in our ancient scriptures that Country, Time and Karaks are infinite more over research based for human development has been stressed upon. In present day Monetary profits have gained attention of human beings, which is a matter of concern - Smami Vivekanand.

The world looks towards India to lead and provide right direction for development of self spiritually and physically by combination of ancient and modern teachings. We should learn from teachings of best of our idols- Guru ji in Drishti aur Darshan. Experiments with education system combined with mali-

cious practices have destroyed many dreams. Distraction has been observed among youth for Engineering, Management and other traditional courses which do not provide appropriate social recognition i.e. employment which can lead to their social life. Mushrooming growth of educational institutions without proper planning and objectives leads us nowhere. Illegal practices of distributing unrecognised degrees can attract aspiring youth for a short period but not good for overall development of the society.

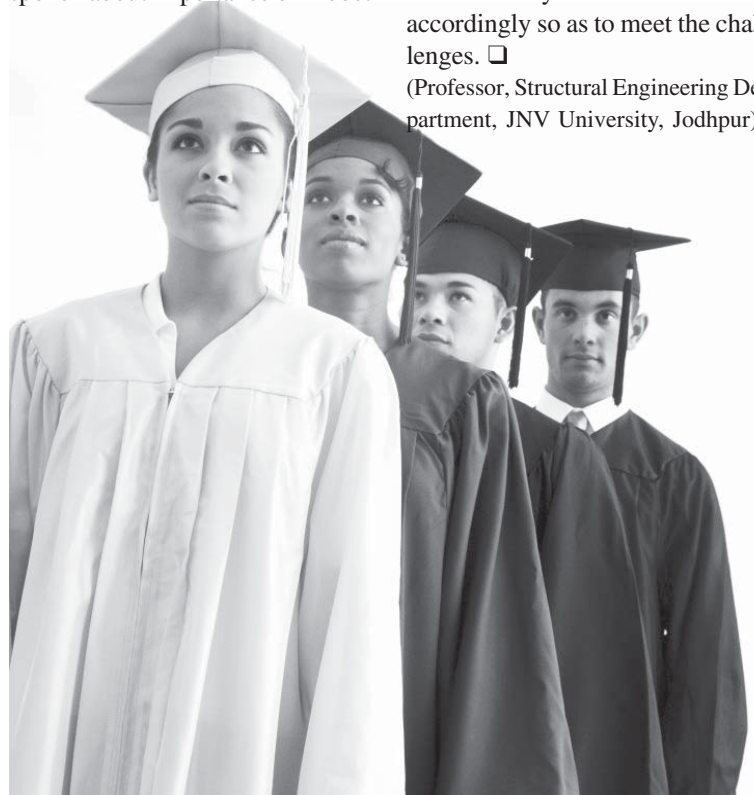
The education system should be such as to inculcate literacy at initial level by beginning learning to recognise outer world. This can be followed by knowing past i.e. History to learn lessons for better future, To be aware about Civic Sense i.e. Present day system of Government, Environmental and other morale issues and ways to deal with these, Human responsibilities in normal and disaster conditions. This can further lead to know in details about science, commerce, languages, mathematics, literature, To do itself activities, general awareness about the overall ambient scenario etc. The education systems should provide modular framework where one should be given opportunity to leave education stream at any point of time to some earning and join back when ever its suitable to them. Needless to say that these modules should provide ample job opportunities at the end of every module. In service or in profession weightage of different modules should be well emphasized by way of promotional opportunities or recognition in profession.

Discrimination not only among genders but also among different social strata but regional and urban versus rural population and smaller & bigger cities & towns as well should be given due consideration in formulating any policy. Unbalanced growth should not result in any kind of disparity. Knowledge i.e. Gyan comes from inner of self without any compulsion or force. Therefore natural development should be given due weightage. The message in Geeta ... Every one of us has Arjun in our selves... Gopal Bhardwaj. What we need is proper guidance to follow right path. Security whether internal or external threats should be handled in proper manner both strategically and diplomatically. Recently Eminent Scholar, Shri Kuldeep Chandra Agnihotri, who spoken about importance of Tibet

for India talked about our negligence in dealing the matter which has fetch external threats to us.

In favourable time when everybody wants to remain in close proximity of main stream may be a greater challenge to deal with. Rethinking about many of our concepts and ideas needs to be pondered upon, as we enter in to the tenth decade of formulation of our Sangthan, to find if there is any need for correcting our path. While doing so many points may need our focus e.g. Flexibility in our thinking to open avenues for moderate people to come along with us in the present day democracy. Superiority of Development over other factors, Equality among all, Appropriate legal framework to safe guard interest of all resulting in the sustainable system. Global importance of our country and need to develop accordingly so as to meet the challenges. □

(Professor, Structural Engineering Department, JNV University, Jodhpur)



भारतीय शिक्षा के स्वरूप की संकल्पना

□ बजरंग प्रसाद मजेजी



राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश की शिक्षा पद्धति को चुस्त दुरस्त करने के प्रयत्नों में बुनियादी शिक्षा की संकल्पना देकर भारतीय शिक्षा पद्धति को स्वावलंबन और अर्थोपार्जन से जोड़ने का प्रयत्न किया। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में बाद में कई प्रयोग प्रारंभ हुये। सार संक्षेप में राष्ट्रीय शिक्षानीति 1986 में शिाक्षा में समानता, सामाजिक न्याय, देश की अद्वितीय सामाजिक संस्कृति, पहचान, राष्ट्रीय समरसता में योगदान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और संविधान में निहित सरोकारों के प्रोत्साहन पर जोर दिया। माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या एवं रूपरेखा 1988 में निहित मूलभूत तत्त्व वर्तमान परिदृश्य में और अधिक प्रासंगिक हैं। नागरिकों में 10 मौलिक कर्तव्यों को संविधान में शामिल करने के लिए जो संशोधन किया गया वह मूल्यवान संकेत है कि एक देश अपने नागरिकों से क्या अपेक्षाएं रखता है।

वस्तुतः आज विद्यार्थी-विद्यार्थी न होकर, मात्र परीक्षार्थी बन गया है। परीक्षा देकर डिग्री लेना ध्येय होता जा रहा है। अंग्रेजों के समय की शासन पद्धति के कारण संस्कृति चिन्तन का प्रवाह अवरुद्ध हो गया। साथ ही दूसरा एक अजनबी, अनचाहा प्रवाह प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजों की शिक्षा नीति का प्रवाह भारत की मूल संस्कृति से मेल खाने वाला नहीं था। परन्तु, शासन के कारण बलवती था। उस समय का बल सांस्कृतिक नहीं अपितु राजकीय और आर्थिक था। अंग्रेजों की शिक्षानीति का प्रभाव हम पर आज भी इतना है कि हमने आज तक हमारी राष्ट्रीय भावना की सुध नहीं ली है। आज भी राष्ट्र क्या होता है, राष्ट्रभक्ति क्या होती है, यह हमारी शिक्षा के विषय नहीं हैं। हमारी राष्ट्रीय कल्पना को हमने अपने संविधान में भी स्पष्ट नहीं किया है। राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय शिक्षा जैसे विषयों की उपेक्षा की है। उससे जनजीवन में भी दुराव आ गया। जनजीवन की वर्तमान समस्याओं का कारण भी यही है। इसलिए सर्वप्रथम हमारी आवश्यकता संस्कृति के पुनरुत्थान की होना चाहिए। संस्कृति के अधिष्ठान पर शिक्षा का चिन्तन करने की

आवश्यकता है। शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह होता है। संस्कृति ही शिक्षा को अधिष्ठान देकर, पुष्ट करती है। शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है जिससे संस्कृति परम्परा बनकर पीढ़ियों में हस्तान्तरित होती है। इसलिए जब राष्ट्र की शिक्षा की बात करते हैं तो सर्वमान्य है कि राष्ट्र बनता है, संस्कृति से। इसका अनिवार्य रूप से भू-भाग और शासन से सम्बन्ध नहीं है। भू-भाग और शासन उससे सम्बन्धित अवश्य है। परन्तु, राष्ट्र को राष्ट्र बनाने वाली, संस्कृति ही है। अस्तु, राष्ट्र का अर्थ सांस्कृतिक संदर्भ में करने से शिक्षा राष्ट्रीय होती है।

शिक्षा के माध्यम से पुष्टि नहीं मिलने पर संस्कृति का क्षरण होता है। संस्कृति क्षरण होने से समृद्धि, सुरक्षा, श्रेष्ठता, गौरव, उत्कृष्टता आदि सब नष्ट हो जाते हैं। यह सब नष्ट न हो इसलिए शिक्षा राष्ट्रीय होना चाहिए। वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा के अभाव में भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग अराष्ट्रीय बन रहा है। शिक्षा का स्वरूप राष्ट्रीय न होने से समाज में जो राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्ति हैं या राष्ट्रभक्त हैं वे भी समयानुकूल बदल रहे हैं। आज भारत से जाने वाले इंजिनियर, चिकित्सक, वैज्ञानिकों से दूसरे देश लाभान्वित हो रहे हैं। उनकी योग्यता का लाभ लेकर नये-नये प्रयोग, तकनीक का आविष्कार कर रहे हैं और वे



उन्हें उनके देश की नागरिकता प्रदान कर रहे हैं। जबकि पहले भारत का विद्यार्थी विदेश में जाता था तो वहाँ से सीखकर भारत वापस आकर, देश को योगदान देता था। वर्तमान में स्थिति यह है कि हम अपनी परम्परा की शिक्षा से दूर होकर मानव समाज में तनाव, आर्थिक विषमता, भेदभाव उत्पन्न करने वाली शिक्षा पद्धति को अपनाने की चेष्टा कर रहे हैं। जबकि किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला शिक्षा होती है। इस स्थिति को देखकर पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यथित होकर कहा कि- 'वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है जो संवेदनशून्य तथा निष्क्रिय बना दे। वह क्या है- मैं नहीं जानता। कदाचित् कोल्हू हो जो शिक्षित के दिमाग और हृदय को पेर कर रसशून्य, संवेदनशून्य और खाली बना दे।' ऐसी शिक्षानीति से हमें उबरना होगा।

स्वतंत्रता पश्चात शिक्षानीति में परिवर्तन के प्रयत्न

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश की शिक्षा पद्धति को चुस्त दुरुस्त करने के प्रयत्नों में बुनियादी शिक्षा की संकल्पना देकर भारतीय शिक्षा पद्धति को स्वावलंबन और अर्थोपार्जन से जोड़ने का प्रयत्न किया। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में बाद में कई प्रयोग प्रारंभ हुये। सार संक्षेप में **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986** में शिक्षा में समानता, सामाजिक न्याय, देश की अद्वितीय सामाजिक संस्कृति, पहचान, राष्ट्रीय समरसता में योगदान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और संविधान में निहित सरोकारों के प्रोत्साहन पर जोर दिया। माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या एवं रूपरेखा 1988 में निहित मूलभूत तत्त्व वर्तमान परिदृश्य में और अधिक प्रासंगिक हैं। नागरिकों में 10 मौलिक कर्तव्यों को संविधान में शामिल करने के लिए जो संशोधन किया गया वह मूल्यवान संकेत है कि एक देश अपने नागरिकों से क्या अपेक्षाएं रखता है। भारतीय संसद में 26 फरवरी 1999 को प्रस्तुत **एस.बी. चव्हाण समिति की रिपोर्ट** बिन्दु 8 में निहित अनुशंखाओं में सत्य, सदाचरण,

शांति, प्रेम और अहिंसा जैसे मूलभूत और सार्वभौमिक मूल्यों को बौद्धिक, भौतिक भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक मूल्यों को मानव व्यक्तित्व के लिए महत्वपूर्ण माने गये हैं। इनके साथ ही शिक्षा के 5 उद्देश्य ज्ञान, कौशल, संतुलन, दृष्टि और अस्मिता से जुड़े हैं। इसके अतिरिक्त सभी विद्यालयों से अपेक्षा की गई कि वे महत्वपूर्ण गुणों जैसे नियमितता, समय की पाबन्दी, स्वच्छता, सेवाभाव, आत्म नियंत्रण परिश्रम, कर्तव्यबोध, उत्तरदायित्व की भावना, सृजनात्मकता, संवेदनशीलता, भाईचारे की भावना, लोकतांत्रिक दृष्टिकोण, पर्यावरण संरक्षण के प्रति निष्ठा के भाव का विकास करें, जिसका वर्तमान शिक्षा पद्धति में अभाव है। चव्हाण समिति ने दृढ़तापूर्वक यह आग्रह किया था कि सभी धर्मों की शिक्षा देना, सामाजिक समरसता, धार्मिक सद्भाव के लिये आवश्यक और महत्वपूर्ण उपकरण है। इससे पूर्व में शिक्षा में परिवर्तन हेतु गठित किये गये आयोगों- राधाकृष्णनन कमीशन 1948, डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर आयोग 1952-53, डॉ. दौलतसिंह कोठारी आयोग 1964-66, यशपाल समिति आदि सभी ने सभी शिक्षा क्षेत्रों में परिवर्तन-परिवर्द्धन के सुझाव दिये थे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आधार एवं संकल्पना

सर्वजन अभिमत है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति में बदलाव की आवश्यकता है ऐसा प्रयत्न आवश्यक है कि शिक्षा से बालक की सामर्थ्य एवं गुणवत्ता में वृद्धि हो। राष्ट्रीय जीवनदर्शन का भाव लेकर शिक्षा दी जानी चाहिए। ढाँचा वही रहेगा, आत्मा को बदलने की आवश्यकता है। केवल तर्क शक्ति या बुद्धि का विकास हमारा लक्ष्य नहीं है। हमें सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना होगा। भारतीय दृष्टिकोण से हमें विचारना होगा। राष्ट्र के लिए व्यक्ति का निर्माण करना होगा। व्यक्ति की बनाएंगे तो राष्ट्र बनेगा। **स्वामी विवेकानन्द** ने कहा है कि- 'अच्छा डॉक्टर अच्छा व्यक्ति नहीं

बना। अच्छा इंजिनियर बन गया, अच्छा व्यक्ति नहीं बना। यह धारणा दूर करनी होगी।' शिक्षा एक डिग्री है, यह धारणा ठीक नहीं है। यह व्यापक है। भारत के बारे में अभी जो अवधारणा है उसे बदलना होगा। सामाजिक कमियों के कारण कुछ कमियाँ आई हैं, उन्हें ठीक करना होगा। सुधार हेतु आस्तिक बुद्धि रखो, ज्ञान और विज्ञान दोनों को जोड़ने से तीन गुण एक व्यक्ति में आवश्यक हैं।'

ज्ञानम्-विज्ञानम्- आस्तिक्यम्

संस्कृति के वाहक शिक्षा का मुख्य आधार हमारा जीवन दर्शन, हमारा राष्ट्रवाद, हमारी संस्कृति, हमारे जीवन मूल्य ही होने चाहिए। उपासना पद्धति, जीवनदर्शन, उससे विकसित हमारी सभ्यता-संस्कृति, उससे बने जीवन मूल्य हमारी राष्ट्रियत्व के आधार हैं। एक फ्रेंच विद्वान के अनुसार- सारी जो विनाशलीला चलेगी, उसे टालने का एक ही उपाय है- नैतिक सरोकारों के प्रजि जागरुकता चाहिए, आध्यात्मिकता चाहिए और नीतिपूर्ण जीवन चाहिए। वे आगे लिखते हैं कि ये तीनों एक साथ देखने हों तो भारत के पास ही मिलेंगे। इसलिए सारी दुनियाँ को भारत से शिक्षा लेनी चाहिए। प.पू. सरसंघचालक मोहन जी भागवत ने पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा आयोज्य विद्वत गोष्ठी नागपुर में राष्ट्रीय शिक्षा स्वरूप और संकल्पना विषय पर विचार व्यक्त करते हुये कहा कि- शिक्षा का मूल उद्देश्य राष्ट्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षा जीवन भर चलने वाला उद्यम है। समग्र विचार लेकर आज की शिक्षा में परिवर्तन को लेकर कार्य करना होगा। हमें शोध करना होगा, सटीक स्थिति मालुम करके आगे बढ़ना होगा। चिन्तन को व्यवहारिक प्रयोगों में उतारना पड़ेगा। प्रयोगों से परिपक्व तथ्य का सार्वजनिक उपयोग कर लोकमत बनाना पड़ेगा। पाठ्यक्रम कैसा हो- निर्णय करना होगा तथा लागू करना होगा। हमारी शिक्षा में व्यक्ति निर्माण, समाज सुधार, राष्ट्रहित को समावेश करने का लक्ष्य होना चाहिए। वही राष्ट्रीय शिक्षा कहलायेगी। □

(कोषाध्यक्ष, अ.भा.रा.शै.महासंघ)

अभिनव शिक्षा की संकल्पना

□ भरत शर्मा 'भारत'



इतिहास गवाह रहा है कि जब भी कोई सद्प्रयास हुआ है विरोध तो होगा ही, क्या हमें हमारी शक्ति, सामर्थ्य और भविष्य के चिन्तन की दृष्टि को इन स्वर्गों में उलझा कर खोना है या दृढनिश्चय के साथ राष्ट्रीय विचारों की शिक्षा का सूत्रपात करना है। स्मरण रहे निर्णय का समय और अवसर को उपलब्धता सदा नहीं रहती अतः भावी भविष्य और राष्ट्रीय अस्मिता को ध्यान में रखकर नेतृत्वकर्ताओं को ऐसा सद्प्रयास तो करना ही होगा। मुझे विश्वास है कि अगर भावी शिक्षानीति में इन सब बातों का समावेश कर दिया जायेगा तो पूर्ववर्ति शिक्षा व्यवस्था के दोष धीरे-धीरे समाप्त हो जायेंगे और राष्ट्रीय भावों के जागरण की शिक्षा का सूत्रपात हो सकेगा तब ही यह देश परम वैभव पर जा सकेगा, जो हम सब चाहते हैं।

जिस प्रकार से रोटी कपड़ा और मकान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं हैं, उसी प्रकार से व्यक्तित्व के निर्माण की पहली आवश्यकता है 'शिक्षा और संस्कार'। यहाँ मूलतः शिक्षा की संकल्पना और उपादेयता को समझना जरूरी है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को साक्षर करना नहीं बल्कि उनमें आत्मविश्वास के जागरण से जीवन की समस्त अच्छाइयों-बुराइयों की पहचान कर उचित दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा देना है। शिक्षा से कर्तव्य जागरण का भाव पैदा होना चाहिए, शिक्षा व्यक्तिगत कुशलता का परिमार्जन करने वाली होनी चाहिए। शिक्षा से अपनत्व, अनुशासन, स्पर्धा, मेलजोल जैसे गुणों का विकास होना चाहिए। वर्तमान में विद्यार्थियों को दी जाने वाली शिक्षा से क्या उनमें चरित्र निर्माण, नैतिकता एवं राष्ट्रीयता के भावों का जागरण हो रहा है? क्या प्राप्त शिक्षा से वो जीविकोपार्जक एवं आत्मनिर्भर बन रहे हैं? ऐसे ही अन्याय प्रश्नों के उत्तर यदि 'हाँ' में आते हैं तो देश को शिक्षा और

नीति दोनों ही श्रेष्ठ कही जा सकती है किन्तु उत्तर यदि 'नहीं' में आता है तो इस पर चिन्तन मनन और परिवर्तन होना अपेक्षित है। परिवर्तन को ही जीवन कहा जाता है, यही परिवर्तन देश की दशा, दिशा और जनमानस के कल्याण का सेतु बनना चाहिए।

समय किसी के सापेक्ष नहीं रहता, स्मरण रहे स्वतन्त्रता के बाद देश में अनेकों शिक्षा आयोगों का गठन और क्रियान्वयन किया गया किन्तु इन समस्त आयोगों की अनुशांषा से लागू की गई शिक्षानीतियों से क्रमागत सुधार के बजाय शिक्षा का स्तर गिरता ही चला जा रहा है। इस विषय की चिन्ता सभी कर रहे हैं और चर्चा होना भी जरूरी है और वो भी तब जब देश की वर्तमान राजनीति ने नई करवट ली है। विगत 67 वर्षों तक का लम्बा कालखण्ड मैकालयी शिक्षानीति के इर्द-गिर्द ही घूमता रहा है। गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा की संकल्पना को गाँधीवादियों ने ही खारिज कर दिया, क्यों? क्योंकि राजनीति के कूटनीतिज्ञों की भाषावाद, क्षेत्रवाद के आधार पर खोदी गई खाईयों का गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा में कोई स्थान नहीं था।



नई शिक्षानीति 1986 के दुष्परिणाम आज हम सबके सामने हैं, जिसकी वजह से भारत जैसे विशाल देश की अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान जगत में क्या स्थिति है ?

कुछ दिनों पहले अखबारों में पढ़ने को मिला कि पड़ोसी देश पाकिस्तान द्वारा भारतीय सीमा पर हो रही घुसपैठ एवं गोलीबारी पर प्रधानमन्त्री जो पहले बहुत बोलते थे, अब मौन साधकर विदेशों की सैर कर रहे हैं। प्रधानमन्त्री ने विपक्षियों की इन टिप्पणियों का उत्तर देते हुए कहा कि गोलीबारी और घुसपैठ की घटनाओं का उत्तर प्रधानमन्त्री की बोली नहीं बल्कि सीमा पर डटे भारतीय जवानों को गोली देगी और परिणाम भी वो ही हुआ जो भारतीय भावना व जनमानस चाहता है। मुझे इसी वक्तव्य में नेतृत्वकर्ता की दृष्टि और दृढ़निश्चय नजर आता है कि जिनका जो कर्तव्य, दायित्व है, वो ही उसको सम्भालें, व्यवस्था करें।

शिक्षा, शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों, बुद्धिजीवियों एवं मनोवैज्ञानिकों के विचार का क्षेत्र है। यही वो विद्वत परिषद है जो देश की शिक्षानीति का ताना-बाना बुनती हैं। पूर्व के सभी शिक्षा आयोगों ने शिक्षा को तीन स्तरों पर विभाजित किया है- प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा। स्तर तो अभी भी यही रहने वाले हैं परन्तु अब दृष्टि परिवर्तन करने की आवश्यकता है कि देश की शिक्षा व्यवस्था पूर्व में चली आ रही पद्धति से भिन्न कैसे हो, जिससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता, नैतिकता, कर्तव्यभावना के जागरण के साथ स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता जैसे बुनियादी विचारों का संचार हो सके। नौजवानों को सिर्फ उपाधि दिलाने वाली शिक्षा व्यवस्था बेरोजगारों की फौज खड़ी कर सकती है, उनमें असन्तोष व हीन भावना भर सकती है, जिससे एक बहुत बड़ा वर्ग, बहुत बड़ी युवाशक्ति का अपव्यय ही होता है, जैसा अभी हो रहा है। इसलिए परिवर्तित नेतृत्व का दायित्व है कि वो शिक्षा के इस त्रिस्तरीय ढाँचे के

सुदृढीकरण और उन्नयन के लिए स्तरानुसार बालमनोविज्ञान एवं बुद्धिलब्धि को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रमों का निर्धारण करें।

प्राथमिक स्तर के बालक बहुत ही संवेदनशील और कोमल होते हैं, इन बालकों का पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें ये बालक स्वयं को सहज महसूस करें तथा तनावरहित रहकर खेल-खेल में ही अपनी जिज्ञासा और बुद्धि स्तर के विकास के साथ ही विषय को आत्मसात कर वर्तमान बोझिल पाठ्यक्रम और बस्ते के भारी बोझ से मुक्ति पा सकें। इस स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा की भाषा भी मातृभाषा ही होनी चाहिए। किन्तु यहाँ त्रिभाषा सूत्र में वर्णित भाषाओं का परिचय, ज्ञान तथा अध्ययन की व्यवस्था भी की जानी अपेक्षित है। इस स्तर के संभावित पाठ्यक्रम में राष्ट्र, राज्य एवं सम्बन्धित अंचल की सामाजिक, भौगोलिक, पर्यावरणीय स्थितियों की जानकारी, महापुरुषों के जीवन चरित्र, भारतीय संस्कार व सभ्यता का परिचय आदि दिये जाने चाहिए। पाठ्यक्रम द्वारा इस स्तर के बालकों में आत्मानुशासन, समन्वय और परिस्थितियों के अनुरूप निर्णय करने की क्षमता का विकास करने वाले तथ्यों का समावेश अवश्य किया जाना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा स्तर के बालक सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्तर के होते हैं, इस स्तर में देश का किशोर वर्ग अध्ययनरत रहता है, दिशाबोध एवं संस्कार निर्माण की सर्वाधिक आवश्यकता इसी स्तर पर होती है। अतः इनके आत्मगौरव को जगाने, स्वाभिमान बनने, सपनों के अनुरूप आसमान और ऊँचाईयों को छूने की पूरी संकल्पना अगर इस स्तर पर होगी तो निश्चय ही उनमें कुछ कर गुजरने की तमन्ना जाग उठेगी और यही पौध भावी राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिकों के रूप में देश का नाम रोशन कर सकेगी। उच्च शिक्षा के स्तर तक आते-आते विद्यार्थियों की सोच-समझ का स्तर लगभग परिपक्वता तक आ चुका होता है। इस स्तर के बालक अपना हित-अहित और

लक्ष्य समझने लगते हैं, यहाँ इन्हें सिर्फ मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इस स्तर के बालकों के पाठ्यक्रम का कलेवर बहुत विस्तृत होना चाहिए जिसमें तमाम क्षेत्रों का अध्ययन, अवसर की उपलब्धता, रुचि अनुरूप व्यवसाय, प्रबन्धन, कौशल, सृजन की यथोचित व्यवस्था एवं प्रतिभा प्रदर्शन के सम्पूर्ण अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

उद्योग का आकार लेती हुई वर्तमान शिक्षा प्रणाली को केवल अमेरिकी साजिश बताकर नेतृत्वकर्ता अपने उत्तरदायित्वों से परे नहीं जा सकते। न ही अब तक की शिक्षा व्यवस्था की दशा और दिशा का रुग्ण कीर्तन करते रहने से समाधान हो सकेगा। अब तो समय और व्यवस्था दोनों आपके हाथों में है, उचित समय पर उचित व्यवस्था और उपचार से ही देश की शिक्षा व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। इतिहास गवाह रहा है कि जब भी कोई सद्प्रयास हुआ है विरोध तो होगा ही, क्या हमें हमारी शक्ति, सामर्थ्य और भविष्य के चिन्तन की दृष्टि को इन स्वर्गों में उलझा कर खोना है या दृढ़निश्चय के साथ राष्ट्रीय विचारों की शिक्षा का सूत्रपात करना है। स्मरण रहे निर्णय का समय और अवसर की उपलब्धता सदा नहीं रहती अतः भावी भविष्य और राष्ट्रीय अस्मिता को ध्यान में रखकर नेतृत्वकर्ताओं को ऐसा सद्प्रयास तो करना ही होगा। मुझे विश्वास है कि अगर भावी शिक्षा नीति में इन सब बातों का समावेश कर दिया जायेगा तो पूर्ववर्ती शिक्षा व्यवस्था के दोष धीरे-धीरे समाप्त हो जायेंगे और राष्ट्रीय भावों के जागरण की शिक्षा का सूत्रपात हो सकेगा तब ही यह देश परम वैभव पर जा सकेगा, जो हम सब चाहते हैं। अन्त में स्वामी विवेकानन्द जी के इस कथन के साथ अपनी बात पूरी करता हूँ- 'उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो।' □

(स्वतंत्र लेखक/कवि)

अमृतं शिक्षा श्रद्धाविश्वासरूपिणोः

□ आशुतोष जोशी



भारतीय शिक्षा वस्तुतः समग्र ही है और हमें इसे संकीर्ण न मानना न नहीं होने देना है। हमें इसे निरन्तर विस्तार देना है नये प्रयोग, नयी उमंगों के साथ कृण्वन्तो विश्वमार्यम् को फैलाना है। यह कार्यत्व, श्रेष्ठत्व है, यहाँ न कतई न सम्प्रदाय न यहाँ सिर्फ एक ही आस्था, विश्वास, श्रद्धा है और वह है मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्। यहाँ स्वान्तसुखायः लिखने की दृष्टि तो है पर उसमें कामना मंगलानां च कर्तारो की है, विभुं व्यापकं बह्वेदं स्वरूपं की अर्चनाई और शिवेतरक्षणे का उद्देश्य, यही हमारा काव्यत्व है ओर यही शिक्षा-दीक्षा।

आस्था, विश्वास, श्रद्धा से विकास व उत्थान बढ़ने की प्रवृत्ति गति लेती है। शिक्षा के मार्ग में विषय के प्रति या यूँ कहे अपने स्वाध्याय के प्रति आस्था, शिक्षक या मार्गदर्शक के प्रति विश्वास और जो कुछ भी कर्म किया जा रहा है, उसको श्रद्धापूर्वक करना प्रशस्ति देता है।

शिक्षा जोड़ने का कार्य करती है, शिक्षा सन्मार्ग दिखाती है, सन्मार्ग की ओर लेकर जाती है। शिक्षा का मार्ग कठिन मार्ग है क्योंकि वह सुचरित्र, सत्यता की ठौर है, और सत्य का मार्ग न केवल विस्तीर्ण अपितु कंटकाकीर्ण होता है।

गीता में चिन्तक श्रीकृष्ण कहते हैं मामनुस्कर युद्धय चः मेरा अनुस्मरण करो और युद्ध करो, तब का प्रसङ्ग युद्ध का था परन्तु वास्तव में वह युद्ध भी कर्म का ही था, सत्कर्म की प्रेरणा प्रधान कारक था, वहाँ भी।

प्रसङ्ग समय, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार बदलते हैं बदलते रहे हैं अतः व्याख्या के समय उसके भाव को समझना जरूरी होता है, हाल ही में प्रधानमंत्री मोदी ने कहा था कि आजादी

के बाद पैदा हुये लोगों के लिए देश के लिए मरने का अवसर तो नहीं है पर देश के लिए जीने का अवसर अवश्य है, अतः हमें देश के लिए जीने का, कर्मणो भाव से कर्म करने का संकल्प लेना चाहिए।

शास्त्र कहते हैं - सन्मार्ग एवं सर्वत्र पूज्यते नाऽयथ क्वचित् - अर्थात् वह मार्ग जो की कर्म सम्मत हो तथा जिसमें लोकोपकार का भाव हो, कालुष्य नदी हो, अनास्था नहीं हो, हितं अहितम् का विचार हो सदा, सदैव, सर्वत्र स्वीकार्य होता है स्वतः ही मान्यता ग्रहण करता है। और जब स्वीकार्य होता है मान्यता ग्रहण करता है जो श्रद्धा के स्तर पर उसे हम पूज्य या पूजनीय मानते हैं।

हमारे यहाँ शिक्षा को यह पदवी प्राप्त है शिक्षा को जीवन का प्राणवाहक माना जाता है, तभी तो पुच्छाविषानहीनः की बात कही गयी है। वह साहित्य, संगीत, कला ही है जो व्यक्ति में मानुष्य चेतना देती है, और ये सब वस्तुतः शिक्षा की ही प्रवृत्ति है।

प्रसिद्ध है कि ऋते ज्ञानान् मुक्तिः - ज्ञान के इतर मुक्ति का मार्ग नहीं है, यह मुक्ति का मार्ग भी कर्म पथ ही है जिसमें व्यक्ति लोकहित



ममकरनीयम् को दृष्टिगत ताकते हुये कार्यक्षेत्र प्रवृत्त रहता है। शिक्षा का ध्येय ज्ञान है और ज्ञान से व्यक्ति का उन्नति पथ प्रशस्त होता है, उन्नति पथ पर आरूढ़ व्यक्ति ही कर्म को आस्था श्रद्धा विश्वास से मानने वाला व्यक्ति मुक्ति पाता है। यह मुक्ति विवेक अविवेक का विषय स्पष्ट करने की शक्ति है।

स्मृति कहती है- साः विद्या या विमुक्तये- अनेवयः विद्या और मुक्त को जोड़ने का तात्पर्य शिक्षा को जीवन से जोड़ना है। शिक्षा जीवन और जीवन के बाद भी निरन्तर जुड़ी रहती है, क्रियाशील बनाये रखती है शास्त्र की रीति-नीति का पालन ही वस्तुतः शिक्षाविद् है।

विद्- विद्वान् का आशय मात्र ज्ञान का एकत्रीकरण ही नहीं है, वह तो विस्तारवादी है, मान्यता यही है कि व्ययकृते वर्द्धते एवनिर्लं-बांटने से बढ़े, संचित करने से घटे। विद्या दान नूढ़ो।।

शिक्षा की महत्ता को भारतीय मनीषा के साथ ही पाश्चात्य विद्वानों ने भी बनाये रखने पर जोर दिया है। यहाँ सिद्धान्त प्रतिस्पद्धा नहीं है, पर भारतीय धारणा, पाश्चात्य विचार से अधिक व्याप्त है क्योंकि हमारे यहाँ शिक्षा-विद्या है और विद्या विनय, पात्रता का वर्धन करती है। वह केवल जीविका, आजीविका नहीं है अपितु वह शैली है, प्रक्रिया है जो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को ऊँचाई देने के लिए औषधि की भाँति कार्य करती है।

शिक्षा वर्तमान में अध्यवसाय से जुड़ गयी है, जिसको व्यावसायिक शिक्षा के नाम से लोक प्रयत्नक मिला है, वैदिक वाङ्मय में शिक्षा वेद ग्रन्थों के लिए निर्देशन पत्रिका होती थी, प्रत्येक देश की अपनी शिक्षा प्रणाली या शिक्षा ग्रंथ होता था, अब भी है। इन शिक्षा ग्रंथों में उच्चारण प्रक्रिया, अर्थग्रहण प्रक्रिया, भाव, शब्दसमीक्षा हस्तालक, पाठन क्रियाविधि इत्यादि का वर्णन मिलता है। जिसमें स्पष्ट होता है कि

शिक्षा एकतत्त्व है और विद्या शब्द पूर्ण आकाश। असीम से भी विद्या असीम ही रहती है, तभी तो ज्ञानकर्मज्ञ विद्या सर्मज्ञ दुर्लभ होते हैं और शिक्षाविद् महज सुलभ।

शिक्षा को केवल आखर ज्ञान या केवल पदवी प्राप्त लेना भी गलती होगी, क्योंकि प्रथम पहलू से ही दृष्टिपात करना एक पक्षीय होता है। हमारे यहाँ शिक्षा बहुआयामी रूप में स्वीकार की गयी है तभी तो व्यावसायिक शिक्षा के साथ ही बुनियादी शिक्षा, मानवीकी शिक्षा, नैतिक शिक्षा आदि अनेक विचार विचारे जाते हैं, जाते रहे हैं।

शिक्षा का स्वयं का दर्शन है, दर्शन अर्थात् दृष्टि। शिक्षा का सिद्धान्त समग्रवाद है जिसे (गेस्टाल्ट) कहा जाता है। इसमें बचपन से प्रौढ़ता तक निरन्तरता रहती है उसका क्षेत्र विद्यालय या विश्वविद्यालय तक ही सीमित न होकर सर्वव्यापक है। हमारे यहाँ तो शिक्षा संस्कार का तत्त्व है। वेद का प्रक्रिया मार्ग है तभी तो जल प्रकृति मृकुपर्वत का संदेश याज्ञवल्क्य शिक्षा देती है। जिसमें व्यष्टि से समष्टि तक व्यक्ति की कल्पना को शिक्षा तत्त्व से जोड़ा गया है, और शिक्षा को सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य माना गया आत्मतत्त्व कहा गया है।

आज विद्यालय से विश्वविद्यालयों तक के प्रसङ्ग निराशा देते हैं, पर इसके लिए शिक्षा नहीं अपितु, शिक्षक नियन्ताओं को जिम्मेदार माना जाना चाहिए। योग्यता-अयोग्यता, प्रभुत्व के कारण शिक्षा का बेड़ा गर्क हुआ है। शिक्षा को केवल और केवल अध्यवसाय मानने वाले लोगों के जमावड़े के कारण हम पिछड़ते जा रहे हैं। पिछड़ने की यह पीड़ा भारतीय समाज को है और वह चिन्तित भी है, परन्तु इसको समाप्त प्रायः करने की प्रकृति न होकर हम इसे केवल टालते जा रहे हैं। हमें शिक्षा की गुणवत्ता के लिए इसकी कमियों को खोजना होगा, उन विसंगतियों का समाधान करना होगा और देना होगा सुविकल्प, जिससे शिक्षा अधोगामी न बनकर विराट बन सके।

समग्रता की दृष्टि से समाधान करने की आवश्यकता है तभी प्रतिष्ठा को पाया जा सकेगा। दूरदर्शन का ध्येय वाक्य- 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' जिसमें सत्य को शिवत्व से आरोपित किया गया है। यह शिवत्व हमारी समग्र सोच है। इस समग्रता में शिक्षा व्यक्तिगत न होकर सार्वभौमिक तब भी थी अब भी है।

सार्वभौमिक शिक्षा का वर्तमान प्रसङ्ग हमारे प्राचीन सिद्धान्तों निकटस्थ हो या उससे प्रेरित हो तो अधिक कारगर होगा। जहाँ वसुधा को ही परिवार माना और पूजा गया है।

उदारचरितानां की यह विचारधारा हमारे शास्त्रों की आधारभूत संरचना को व्यक्त करते हैं जिसमें पृथ्वी से अंतरिक्ष तक को परस्पर जोड़ा गया है। आज भी हमारे यहाँ कुण्डली, ज्योतिष दर्शन के प्रति आस्था है और यह आस्था बढ़ी ही है, जरा गौर से देखें तो बुध, शनि, राहू और मंगल का हमारे कुण्डली-पत्रिका में होने का संकेत वस्तुतः पारम्परिक विस्तार का ही है।

कराग्रे वसति या सर्वग्रहा शान्तिवराः हमारे शिक्षा के सर्वव्यापकता के किञ्चित उदाहरण है, जब शास्त्रों का अवगाहन प्रारम्भ किया जायेगा तो ये तत्त्व विस्तार लेंगे इति विस्तीर्य रूप में प्रस्तुत होगा।

भारतीय शिक्षा वस्तुतः समग्र ही है और हमें इसे संकीर्ण न मानना न नहीं होने देना है। हमें इसे निरन्तर विस्तार देना है नये प्रयोग, नयी उमंगों के साथ **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** को फैलाना है। यह कार्यत्व, श्रेष्ठत्व है, यहाँ न कतई न सम्प्रदाय न यहाँ सिर्फ एक ही आस्था, विश्वास, श्रद्धा है और वह है **मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्**। यहाँ **स्वान्तसुखायः** लिखने की दृष्टि तो है पर उसमें कामना **मंगलानां च कर्तारो** की है, **विभुं व्यापकं बह्वेदं स्वरूपं** की अर्चनाई और शिवेतरक्षेपे का उद्देश्य, यही हमारा काव्यत्व है और यही शिक्षा-दीक्षा। □

ज्ञान आधारित हो हमारी शिक्षानीति

□ डॉ. रेखा भट्ट



सीखने की इस प्रक्रिया में प्रशिक्षण का अत्यधिक महत्व है। नवीन शिक्षानीति में कई प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शामिल किये जाए, जो विद्यार्थी को उच्च शिक्षा हेतु आगे बढ़ने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम बनाने में मददगार हो, जैसे - स्थानीय व हस्त शिल्प कला, उद्योगों से जुड़े पाठ्यक्रम, खेती को बढ़ावा देने वाले कृषि व्यवसाय पाठ्यक्रम, डेयरी, पशुपालन, मत्स्य व मुर्गी पालन, सस्ते घर व भवन निर्माण से जुड़े तकनीकी पाठ्यक्रम, आदि। उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा नीति को थोड़ा व्यापक एवं लचीला बनाने से दूरस्थ क्षेत्रों के व ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी भी उच्च शिक्षा की ओर आकृष्ट होंगे, उनके ड्रॉप आउट की संख्या में भी कमी आएगी।

किसी भी देश में सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव का सबसे बड़ा साधन होती है - शिक्षा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षानीति के अभाव में हम शिक्षा के भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सके हैं, परन्तु यही उचित समय है जब हम कुछ आवश्यक नीतिगत सम-सामयिक परिवर्तन कर उचित शिक्षा नीति द्वारा भारतीय संस्कृति के चिरन्तन वैभव को पुनः प्राप्त करने के साथ वर्तमान वैश्विक विकास की गति के साथ कदम से कदम मिला सकते हैं।

शिक्षा मुख्य रूप से ज्ञान व मूल्यों के साथ-साथ दक्षता का समन्वय है, जो विद्यार्थी को जीवन पर्यन्त सीखते रहने की प्रक्रिया को आधार प्रदान करती है। शिक्षानीति के बहुदेशीय लक्ष्यों के निर्धारण व क्रियान्वयन पर ही शिक्षा की गुणवत्ता एवं सफलता निर्भर करती है। वर्तमान में हमारी शिक्षा प्रणाली केवल परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के तरीकों पर आधारित रह गई है। इसमें ज्ञान का समायोजन ही शिक्षण प्रक्रिया को उत्कृष्ट बनाएगा।

पिछले 67 वर्षों में शिक्षा जैसे मूलभूत आवश्यकताओं और मानव अधिकार पर संवेदनशीलता से ईमानदारीपूर्वक विचार एवं सुधार के स्थान पर केवल पाश्चात्यवादी प्रयोग किये जाते रहे, जो 'शिक्षा प्रसार' केन्द्रित है। विद्यार्थी को केवल साक्षर करना या प्राथमिक विद्यालयों में उनके नामांकन की संख्या में वृद्धि शिक्षा की सफलता का मापदण्ड नहीं है। गत 10 वर्षों से इसके तहत चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों, सर्व शिक्षा अभियान, शिक्षा का अधिकार, ब्लेक बोर्ड अभियान, मुफ्त शिक्षा, मिड-डे-मील आदि अभियानों से विद्यार्थियों की प्राथमिक विद्यालयों में उपस्थिति तो बढ़ी है, किन्तु वहाँ भी हम निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सके हैं। आज प्राथमिक स्तर के शिक्षक का कार्य मात्र विद्यार्थियों की

गणना, आहार-पोषण की तथा कक्षा-कक्षों की व्यवस्था करने तक ही सीमित रह गया है। आठवीं तक विद्यार्थी को अनुत्तीर्ण नहीं करने के नियम ने तो 'कोढ़ में खाज करते हुए' शिक्षा को केवल क्षरित किया है। पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक और शिक्षार्थी से दूर हो गयी हैं। यदि वर्तमान व्यवस्था में भी वास्तविक शिक्षण कार्य हो तो आठवीं तक के विषय साहित्य, इतिहास, भूगोल, नैतिक शिक्षा, पर्यावरण आदि विषयों से विद्यार्थी द्वारा ज्ञान व मूल्यों का अधिग्रहण स्वतः हो सकता है।

माध्यमिक व उच्च-माध्यमिक स्तर की शिक्षा में तो शिक्षण पद्धति का निर्धारण ही अनिश्चित बना हुआ है। नवीन सी.सी.ई. पद्धति सभी विद्यालयों में समान रूप से लागू नहीं की गई है। इसमें बोर्ड की अपेक्षा आन्तरिक मूल्यांकन की अर्हता बढ़ाये जाने से मूल पाठ्यपुस्तकों का शिक्षण भी विकेंद्रित हो गया है। शिक्षकों के हजारों रिक्त पदों पर अस्थायी रूप से नियुक्त विद्यार्थी मित्रों द्वारा शिक्षण कार्य मात्र औपचारिकता पूर्ण करना है। उच्च माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थी के जीवन की दिशा को निर्दिष्ट करती है। इस स्तर के शिक्षा नीति में ऐसे पाठ्यक्रमों का समावेश हो, जिसमें विद्यार्थी अपनी योग्यता व रुचि को परखने का अवसर प्राप्त करें और सही विषय व कैरियर का विकल्प चुन सके। इसके लिए उच्च माध्यमिक स्तर पर परम्परागत पाठ्यक्रमों (कोर्स) को सीमित करते हुए सीखने की प्रक्रिया आधारित नवीन पाठ्यक्रम रखे जाए। केवल उच्च-माध्यमिक डिग्री के बजाय किसी विशेष क्षेत्र में विद्यार्थी को पूर्ण योग्य बना सकें तथा उनकी योग्यता, दक्षता प्रदर्शन के आधार पर परिणाम दिये जाए।

सीखने की इस प्रक्रिया में प्रशिक्षण का अत्यधिक महत्व है। नवीन शिक्षा नीति में कई प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शामिल किये जाए, जो विद्यार्थी को उच्च शिक्षा हेतु आगे बढ़ने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम बनाने में मददगार हो, जैसे - स्थानीय व हस्त शिल्प कला, उद्योगों से जुड़े पाठ्यक्रम, खेती को बढ़ावा देने वाले कृषि व्यवसाय पाठ्यक्रम,

डेयरी, पशुपालन, मत्स्य व मुर्गी पालन, सस्ते घर व भवन निर्माण से जुड़े तकनीकी पाठ्यक्रम, आदि। उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षानीति को थोड़ा व्यापक एवं लचीला बनाने से दूरस्थ क्षेत्रों के व ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी भी उच्च शिक्षा की ओर आकृष्ट होंगे, उनके ड्रॉप आउट की संख्या में भी कमी आएगी।

आजादी के 67 वर्ष बाद भी सबसे ज्यादा उपेक्षित है - उच्च शिक्षा। यही कारण है कि उचित क्रियान्वयन के अभाव में RUSA (राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान), व NCHEER (नेशनल कॉउन्सिल ऑफ हॉयर एजुकेशन एण्ड रिसर्च) जैसे अभियानों के चलते भी विश्व के प्रथम 200 विश्वविद्यालयों में भारतीय विश्वविद्यालय को स्थान प्राप्त नहीं हो सका है।

प्राथमिक शिक्षा में प्रसार के साथ ही माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए भी मांग बढ़ती है, किन्तु व्यावहारिक एवं समसामयिक नीति के अभाव में हम विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या की इस पूर्ति के लिए तैयार नहीं हैं। परिणाम स्वरूप उच्च शिक्षा में सैकड़ों निजी व अनुदानित महाविद्यालय पनप गए हैं, जो केवल शिक्षा का व्यापारीकरण कर उच्च शिक्षा के गिरते स्तर में सहयोगी बन रहे हैं। कम्प्यूटर शिक्षा, तकनीकी-प्रबन्धन व चिकित्सकीय क्षेत्रों में भी निजी संस्थाओं का बोलबाला है। इसके चलते अब शैक्षणिक योग्यताओं व उपलब्ध नौकरियों के बीच ज्यादा अन्तर नहीं रहा है। स्पष्ट शिक्षानीति के अभाव में वर्तमान उच्च शिक्षा अनेकों समस्याओं से ग्रसित है। इसमें से कुछ मुख्य समस्याओं का निराकरण अति-आवश्यक है। (1) सरकारी संस्थान उन्नत करने के स्थान पर शिक्षण काल बढ़ाया जाता रहा, (2) परम्परागत पाठ्यक्रमों को वर्षों से बिना परिवर्तन द्रव्य जा रहा है, (3) शिक्षकों की कमी को संविदाकर्मियों से पूरा किया जा रहा है, (4) केवल यू.जी.सी. के मानदण्डों

और निर्देशों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है, (5) लिपिक के पद से लेकर वी.सी. की नियुक्ति तक में राजनीतिक हस्तक्षेप रहता है। उच्च शिक्षा को इस मकड़ जाल से उबारे बिना हम राष्ट्र को सशक्त आर्थिक आधार देने में समर्थ नहीं होंगे।

उच्च शिक्षानीति में प्रत्येक स्टेक होल्डर - निवेशक, अंकेक्षक, एम्प्लोयर, प्रबन्धक, स्टॉफ व कर्मचारियों के बीच समन्वय होना आवश्यक है। कोर्स निर्धारण, कार्य प्रबन्धक, प्रवेश नीति, नियुक्ति सम्बन्धी, वेतन, सेवा सम्बन्धी शर्तें सभी में आई.आई.टी. व आई.आई.एम. की तरह स्वायत्तता हो।

उच्च शिक्षण संस्थानों को अधिक प्रतियोगी एवं पारदर्शी बनाने की आवश्यकता है। प्रवेश संख्या, उत्तीर्ण छात्रों की संख्या व विभिन्न सेवाओं में चयनित छात्र संख्या की स्पष्ट एवं सही जानकारी आवश्यक है। इन संस्थानों के नेतृत्व करने वाले संरक्षक, शिक्षक तथा कुलपति न केवल पर्याप्त पात्रता रखते हो, वरन् अनुशासन व परम्पराओं को मान्यता देने वाले, निःस्वार्थ भाव से शिक्षा सेवा जैसे गुणों से परिपूर्ण व्यक्तित्व हों।

उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाने के चलन को कम करने हेतु, विदेशी शिक्षा विनिमय (Foreign Education Exchange Programme) कार्यक्रम को अपनाते की आवश्यकता है। साथ ही सरकारी संस्थानों में विश्व स्तरीय गुणवत्ता विकसित करने का प्रयास हो।

वोकेशनल एजुकेशन कार्यक्रमों को बढ़ावा देने से स्किलड वर्क फोर्स तैयार हो सकेगी। नवाचार प्रयोगशाला (इनोवेशन लेब्स) बनाई जाए, जिन्हें औद्योगिक शिक्षा सहयोग (इण्डस्ट्रीयल एकेडेमिक कोलेबोरेशन) द्वारा जोड़ा जाए और इन लेब्स में होने वाले शोध कार्यों को व्यावसायिक आर्थिक लब्धता में बदला जा सके। कितने ही शोध संस्थानों में सामाजिक व मानवता

के हित में चले रहे महत्वपूर्ण शोध बजट का अभाव झेल रहे हैं और कहीं विश्वविद्यालय बिना रिपोर्ट की वैधता के बड़े एवं अनुपयोगी प्रोजेक्ट हासिल कर लेते हैं। शोध उच्च स्तरीय सुविधाओं से परिपूर्ण हो, रिचर्स एवं डवलपमेन्ट पर जी.डी.पी. का खर्च 1 प्रतिशत से बढ़ाया जाए और बुनियादी अनुसंधान को बढ़ावा मिले।

शोध में निवेश व खर्च पर पर्याप्त सूचक तंत्र विकसित हो। निश्चित अन्तराल पर मूल्यांकन द्वारा प्रक्रिया में उत्तरोत्तर सुधार करने पर ही उच्च स्तरीय शोध परिणाम प्राप्त हो सकेंगे। साहित्यिक व सामाजिक शोध को महत्वपूर्ण बनाने के लिए शिक्षा नीति में हिन्दी भाषा के महत्व को स्थापित करना आवश्यक है, जहाँ आज केवल अंग्रेजी को वैश्विक बाजारीकरण की भाषा मान ली गई है। सरकारी उच्च शिक्षा संस्थान केवल प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए आवश्यक पात्रता की डिग्री हासिल करने तक सीमित न रहे। आवश्यकता है कि हम औपचारिक शिक्षानीति से आगे ज्ञान आधारित शिक्षा (Knowledge based Education) प्रदान करें, जो विद्यार्थी को पूर्ण दक्षता व रचनात्मकता के साथ समृद्ध जीवन जीने की क्षमता प्रदान करे। हमारे विद्यार्थी भारत में पढ़कर भी गर्व की अनुभूति करें।

हमारी शिक्षा का उद्देश्य भारतीय परम्पराओं को अक्षुण्ण रखना व भारत में ही भारतीय छात्रों की बुद्धि, क्षमता व विवेक का उपयोग हो। इस शिक्षानीति में विद्यार्थी के सम्पूर्ण हितों को ध्यान में रखा जाए तथा साथ में समर्पित शिक्षक व कुशल प्रशासन का समावेश हो, तो हम वैश्विक शिक्षा में सर्वश्रेष्ठ स्थान पा सकते हैं तथा पुनः नालन्दा, तक्षशिला तथा टैगोर की विश्व भारती जैसे, भारत की गौरवमयी शैक्षिक परम्परा के प्रतीक, शिक्षा के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त करने में सक्षम होंगे। □

(व्याख्याता, रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान)



पाठ्यक्रम में सातत्य, संतुलन एवं सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। सभी स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का आवश्यकतानुसार समावेश किया जाए। कम से कम हर तीन वर्ष में पाठ्यक्रम की समीक्षा करके नया पाठ्यक्रम तैयार होना चाहिए। शुद्धता, स्वच्छता का ध्यान रखा जाए। पाठ्यक्रम जटिल न हो। सरलता से कठिन की ओर आगे बढ़ने का क्रम हो। पाठ्यक्रम में तथ्यात्मकता का विशेष ध्यान रखा जाए। शिक्षा के आधारभूत अंग का पाठ्यक्रम में समावेश-व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण, मूल्य आधारित, पर्यावरण, योग, शारीरिक शिक्षा, खेल, संगीत शिक्षा, सामाजिक कार्य, सैनिक शिक्षा, कृषि शिक्षा।

पाठ्यक्रम का स्वरूप

□ अतुल कोठारी

पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा के उद्देश्य के प्रकाश में ही होना चाहिए। एक प्रकार से शिक्षा का उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम के उद्देश्य एक ही होना चाहिए। शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति में पाठ्यक्रम का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है।

शिक्षा का उद्देश्य

चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का विकास। सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय चुनौतियों का समाधान।

यूनेस्को की डैलर्स समिति के अनुसार किसी भी देश की शिक्षा वहाँ की संस्कृति एवं प्रगति के अनुरूप होनी चाहिए। मैंने इसमें एक शब्द प्रकृति जोड़ा है। किसी देश शिक्षा संस्कृति, प्रकृति एवं प्रगति के अनुरूप हो।

मृदालियर आयोग की अनुशंषाओं में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है, सामाजिक चेतना, देश प्रेम की भावना एवं छात्रों में नागरिकता का विकास है।

चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास

छात्रों के चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व के समग्र विकास हेतु उपनिषद में दिये गये 'पंचकोश' की संकल्पना आधारभूत है। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा से तात्पर्य संदर्भ में कहा है कि 'मेन

मेकिंग एवं केरेक्टर बिल्डिंग', वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य है, तो यही मूल तत्व है:-

- अन्नमय कोष - शारीरिक विकास
 - प्राणमय कोष - प्राणिक विकास
 - मनोमय कोष - मानसिक विकास
 - विज्ञानमय कोष - बौद्धिक विकास
 - आनन्दमय कोष - आध्यात्मिक विकास
- सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति**

देश में 'मानव शक्ति सर्वे' (मेनपावर सर्वे) करके भारत में कितने डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक आदि की आवश्यकता है। उसके अनुसार शैक्षिक संस्थानों का निर्माण होना चाहिए। उदाहरण आज हमारे देश में सेना के अधिकारियों के हजारों पद रिक्त हैं, इस हेतु सैनिक शिक्षा को प्रमुखता देनी चाहिए। उसी प्रकार अनुसंधान का कार्य बहुत कम हो रहा है इस हेतु विद्यालय स्तर से ही प्रयोगशीलता को बढ़ावा देना चाहिये, जिससे क्रमशः छात्रों का अनुसंधान कार्य का स्वभाव बने आदि। इसको ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम की व्यवस्थाएँ होनी चाहिए। देश की योजना एवं शिक्षा की योजना का तालमेल होना चाहिए।

कोठारी आयोग- माध्यमिक शिक्षण को राष्ट्र में श्रमशक्ति की आवश्यकताओं की ओर प्रवृत्त किया जाये।



राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, चुनौतियों का समाधान

देश और दुनिया के समक्ष आज जो संकट विद्यमान है। उन संकटों के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता निर्माण करके उनके समाधान की दिशा में ठोस कार्य करने हेतु नये पाठ्यक्रमों की शुरुआत एवं वर्तमान पाठ्यक्रम में उन विषयों का योग्य पद्धति से समावेश करना आवश्यक है। इनकी समय-समय पर समीक्षा करके आवश्यक बदलाव भी अपेक्षित है। इस हेतु -

1. आतंकवाद एवं राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक साम्राज्यवाद एवं वैश्विक मंदी, विश्व की महत्वपूर्ण भाषाओं का अध्ययन, पर्यावरण का संकट एवं ग्लोबल वार्मिंग, स्वास्थ्य शिक्षा, विभिन्न पंथ/ मजहबों का सामंजस्य आदि के पाठ्यक्रम शुरू होने चाहिए या पाठ्यक्रम में समावेश होना चाहिए।

पाठ्यक्रम की आधारभूत संकल्पनाएँ - पंचकोश आधारित पाठ्यक्रम, व्यवहार और सिद्धांत का संतुलन, भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समायोजन, प्राचीन एवं आधुनिकता का समन्वय, समग्रता एवं एकात्म का दृष्टिकोण।

व्यवहार एवं सिद्धांत का संतुलन- सिद्धांत जब तक व्यवहार में नहीं आता है तब तक उस सिद्धांत का ज्यादा उपयोग नहीं होता है। व्यवहारिकता एवं प्रायोगिकता के दो प्रकार हो सकते हैं- 1. विद्यालय की प्रयोगशाला, कक्षा एवं मैदान में प्रयोग, 2. विद्यालय की चार दीवार के बाहर दोनों का महत्व है। इस हेतु हर पाठ के अंत में गतिविधियों का एक विभाग (चेप्टर) होना चाहिए। जिसमें प्रकल्प कार्य (प्रोजेक्ट वर्क), छोटे-मोटे प्रयोग, कार्यक्रम, नियमित कार्य आदि का समावेश किया जा सकता है। एक प्रकार से पाठ्यक्रम क्रिया आधारित होना चाहिए।

भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समायोजन- प्रत्येक विषय की शुरुआत में इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करना चाहिए। उदाहरण के लिये मेडिकल के पाठ्यक्रम

में डॉक्टर क्यों बनना है इसके पीछे का सामाजिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय दृष्टिकोण का प्रस्तुतीकरण अनिवार्य रूप से हो। यानी डॉक्टर बनकर बड़े आदमी बनना है, अच्छा पैसा कमाना है इसके साथ मानव एवं गरीबों की सेवा करके स्वस्थ समाज के निर्माण करने हेतु मुझे महत्वपूर्ण योगदान देना है। मा. दीनानाथ बत्रा जी के शब्दों में 'शिक्षा जीने और जीवन के लिये है'।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि निःस्वार्थ भाव से कोई भी कार्य करना यही आध्यात्मिकता है। इस हेतु सामाजिक कार्य पाठ्यक्रम का हिस्सा हो जो सिद्धांत पुस्तक में बताए गये हैं उसकी व्यावहारिक शुरुआत कहाँ से होगी, स्वयं से ही इसी प्रकार नौकरी-व्यवसाय करते समय किसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं पर्यावरण को नुकसान करने वाली कोई भी बात नहीं करना आदि। यही आध्यात्मिक दृष्टिकोण है।

प्राचीन एवं आधुनिकता का समन्वय - हर विषय का प्रथम पाठ उस विषय के भारतीय इतिहास का होना चाहिए। हमारे प्राचीन ग्रंथों में अनेकों विषयों का ज्ञान उपलब्ध है। उदाहरण के लिये वैदिक गणित। वैदिक यह प्राचीन संकल्पना है परन्तु प्रतियोगी परीक्षा में उसका, अच्छा उपयोग है। शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास ने वैदिक गणित का 1 से 12 तक का पाठ्यक्रम का प्रारूप केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् के गणित के पाठ्यक्रम में वैदिक गणित का वैकल्पिक रूप में कहाँ-कहाँ उपयोग किया जा सकता है, जिससे छात्रों को गणित समझना सरल हो जाए। इस प्रकार का पाठ्यक्रम तैयार किया है।

इसी प्रकार संगणक (कम्प्यूटर) में संस्कृत का उपयोग। इस विषय पर, नासा (अमेरिका) में भी कार्य किया जा रहा है। सीखने की पद्धति में संगणक के समावेश के साथ संवाद माध्यम के अधिक उपयोग को पुनः लाना होगा। विद्यालयों के आधुनिक सुविधायुक्त भवनों में गुरु शिष्य की श्रेष्ठ परम्परा को पुनः स्थापित करना होगा।

कुछ लोग मानते हैं कि जो भी आधुनिक है वह श्रेष्ठ है इसलिए प्राचीन

की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग यह मानते हैं कि प्राचीन ही श्रेष्ठ है इसलिए आधुनिकता की आवश्यकता नहीं है। दोनों अतिमवादी सोच ठीक नहीं है। दोनों का समन्वय करने से उत्कृष्टता की ओर बढ़ा जा सकता है। प्रत्येक विषय में इसी दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम तैयार किये जा सकते हैं।

इस प्रकार जो भी आधुनिक शोध-अनुसंधान होते हैं वह हमारे पाठ्यक्रम का हिस्सा बनना चाहिए। पाठ्यक्रम में सतत् सुधार प्रक्रिया होनी चाहिए। जब वैश्विक स्तर पर ईश्वरीय कण (गोड पार्टिकल) पर नया अनुसंधान हुआ उसके बारे में हमारे छात्रों को जानकारी ही नहीं, न पाठ्यक्रम का हिस्सा बनी यह घटना। विश्व जितनी गति से आगे बढ़ रहा है उस गति से हमारा पाठ्यक्रम में सतत् सुधार आवश्यक है।

समग्र एवं एकात्म दृष्टिकोण

सभी कक्षाओं एवं सभी विषयों के पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्य के प्रकाश में हो। उद्देश्य सम्बन्धित एवं आधारभूत अंग सम्बन्धित सारे विषयों का सभी स्तर पर समावेश होना चाहिए। पाठ्यक्रम में सातत्य रहे इस हेतु सभी कक्षाओं के पाठ्यक्रम को तुलनात्मक देखना होगा। संभव है तब तक पाठ्यक्रम एक छत के नीचे लिखा जाना चाहिए। अन्यथा कई बार देखने को मिलता है कि कक्षा 8 का पाठ्यक्रम कक्षा 9 से ज्यादा बड़ा और जटिल है।

वर्तमान में शिक्षा का टुकड़ों-टुकड़ों में विचार किया जा रहा है। परिणाम स्वरूप इसमें से निकलने वाले युवक का व्यक्तित्व भी खंडित बन रहा है और इसका प्रतिबिंब समाज जीवन में दिखाई देता है। इसके परिणामस्वरूप आज अपना समाज जाति, भाषा, प्रांत, अमीर-गरीब, महिला-पुरुष, तथाकथित सवर्ग, दलित आदि में बंटा हुआ है।

पाठ्यक्रम में समाविष्ट शिक्षा के अन्य उद्देश्य-

- सृजनात्मक शक्ति, कल्पना शक्ति एवं जिज्ञासा वृत्ति का विकास।

- ज्ञानात्मक, बोधात्मक,



भावात्मक, संवेदनात्मक, क्रियात्मक, कौशलात्मक विकास।

पाठ्यक्रम तैयार करते समय ध्यान रखने हेतु आवश्यक बातें-

क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार - पाठ्यक्रम वहाँ-वहाँ की स्थानीय भाषाओं में हो। उस क्षेत्र के कृषि उत्पाद, कुदरती सम्पदा एवं व्यवसाय-रोजगार के अनुसार पाठ्य-सामग्री एवं उनमें वहाँ के अनुरूप उदाहरणों का समावेश हो। गोवा के पाठ्यक्रम में काजू की खेती और उत्पादन सम्बन्धित बातें हो सकती हैं। परन्तु वही बातें दिल्ली या कोलकाता के पुस्तकों में अपेक्षित नहीं होगी।

गाँवों एवं जनजातिय क्षेत्रों का पाठ्यक्रम- हमारा देश अधिकतर गाँवों में बसा है परन्तु हमारे यहाँ आज अधिकतर पाठ्यक्रमों की रचना शहरों पर आधारित है। शहरी और ग्राम्य एवं जनजातीय क्षेत्रों के पाठ्यक्रम का स्वरूप भिन्न हो सकता है या एक ही पाठ्यक्रम दोनों की आवश्यकताओं का समानरूप से समावेश किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम में लचीलापन- वर्तमान व्यवस्था में आप विज्ञान के साथ संगीत या संस्कृत नहीं पढ़ सकते। विशेष करके 10वीं, 11वीं एवं 12वीं में विषयों के चयन में अधिक लचीलेपन की आवश्यकता है। छात्रों को

अपनी रुचि-प्रकृति के अनुसार विषय चुनने का अवसर होना चाहिए। पाठ्यक्रम में सातत्य, संतुलन एवं सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। सभी स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का आवश्यकतानुसार समावेश किया जाए। कम से कम हर तीन वर्ष में पाठ्यक्रम की समीक्षा करके नया पाठ्यक्रम तैयार होना चाहिए। शुद्धता, स्वच्छता का ध्यान रखा जाए। पाठ्यक्रम जटिल न हो। सरलता से कठिन की ओर आगे बढ़ने का क्रम हो। पाठ्यक्रम में तथ्यात्मकता का विशेष ध्यान रखा जाए।

शिक्षा के आधारभूत अंग का पाठ्यक्रम में समावेश- व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण, मूल्य आधारित, पर्यावरण, योग, शारीरिक शिक्षा, खेल, संगीत शिक्षा, सामाजिक कार्य, सैनिक शिक्षा, कृषि शिक्षा।

स्वावलम्बन हेतु शिक्षा-व्यावसायिक शिक्षा, कौशल की शिक्षा (स्किल डवलपमेंट)

जीवनकौशल का शिक्षण - समय प्रबंधन, स्वास्थ्य प्रबंधन, तनाव प्रबंधन, वित्तीय प्रबंधन।

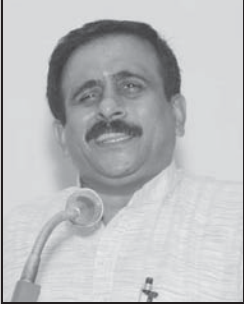
सहशैक्षिक गतिविधियाँ - छात्रों में राष्ट्रीयता एवं नागरिक कर्तव्य भाव का विकास आदि।

पाठ्यचर्या- पाठ्यक्रम- पाठ्य सामग्री- पाठ्य पुस्तकें - उपरोक्त शिक्षा के उद्देश्य के प्रकाश में पाठ्यचर्या की भूमिका तैयार की जानी चाहिए। पाठ्यचर्या समग्र प्रक्रिया का आधारभूत अंग है। पाठ्यचर्या में दिए गए उद्देश्य के प्रकाश में पाठ्यक्रम बनता है। इस पाठ्यक्रम के आधार पर आवश्यक पाठ्य सामग्री तैयार की जाती है, उसके आधार पर पाठ्य पुस्तकें तैयार की जाती हैं।

पाठ्यक्रम की रचना करते समय अतीत का आधार लेकर वर्तमान की आवश्यकताएँ एवं भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखना होगा। □

(सचिव, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास)

समर्थ भारत के लिए शिक्षानीति



शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन हेतु, समाज का मन तैयार करना यह प्राथमिक आवश्यकता है। सरकारी स्तर पर परिवर्तन तो आवश्यक होगा किन्तु यदि समाज उस परिवर्तन हेतु तत्पर न हो, तो केवल कानून के बदल देने से व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होगा। दहेज विरोधी अधिनियम तथा दलित अत्याचार विरोधी अधिनियम इस बात के साक्षात् उदाहरण है। दोनों अधिनियमों के प्रावधान कितने भी अच्छे क्यों न हो, समाज में अपेक्षित मानसिक परिवर्तन न हुआ होने के कारण, इनका दुरुपयोग ही अधिक हुआ है।

□ मुकुल कानिटकर

किसी भी राष्ट्र के उत्थान व पतन में वहाँ के समाज की बौद्धिक क्षमता व संकल्प शक्ति का बहुत बड़ा हाथ होता है। इसीलिए शिक्षा व्यवस्था को राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी के रूप में देखा जाता है। ज्ञात विश्व इतिहास के अधिकतम कालखंड में भारत सारे विश्व का सबसे समृद्ध तथा अग्रणी देश रहा है। इस बात में भी शिक्षा व्यवस्था का सीधा हाथ रहा है। जहाँ एक ओर भारत के व्यापारी सारे विश्व में अपना व्यापार फैला रहे थे, उसी समय सारे विश्व के छात्र शिक्षा प्राप्त करने भारत की विश्वविद्यालयों में पंक्तिबद्ध हो रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, जब भारत की देशज शिक्षा व्यवस्था को अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया तब से ही भारत का आर्थिक वर्चस्व भी धीरे धीरे समाप्त होता गया। सत्रवीं शताब्दी तक विश्व के उत्पादन में एक तिहाई योगदान करने वाला भारत अपनी स्वतंत्रता के समय तक एक विपन्न देश बन गया था। आज फिर एक बार भारत में विश्वविजय की आशा जगी है। भारत के युवा विश्वमंच पर अपनी मातृभूमि को गौरवमय स्थान प्रदान करने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। मुख्यधारा के प्रचार माध्यमों में भी विश्वगुरु जैसी संकल्पनाओं का खुल के प्रयोग होने लगा है। ऐसी परिस्थिति में केवल आर्थिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करके काम नहीं चलेगा। देश को पुनः एक बार विश्वमंच पर उचित स्थान

दिलाने हेतु शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन अति आवश्यक है।

भारतीय शिक्षण मंडल ने इसी उद्देश्य से समग्र शिक्षा नीति का प्रारूप तैयार किया है। सामान्यता शिक्षा के भारतीयकरण का विचार करते समय पाठ्यक्रम में परिवर्तन कर उसमें राष्ट्रीयता लाने पर विचार किया जाता है। ब्रिटिश काल से सिखाये जा रहे गलत इतिहास को ठीक कर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इतिहास पढ़ाने का आग्रह किया जाता है। यह आवश्यक तो है, किन्तु पर्याप्त नहीं। यदि हम ध्यान से देखें तो पायेंगे कि 1835 में जब मैकाले ने भारतीय शिक्षण पद्धति को पूर्णता बदलकर ब्रिटिश व्यवस्था को लागू किया तब उन्होंने शिक्षा की पाठ्यवस्तु बदलने की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जितना कि शिक्षा व्यवस्था की संरचना को पूरी तरह बदल देने पर। मैकाले ने शिक्षा का ढाँचा ही बदल दिया। ढाँचे के बदल जाने से दूरगामी परिणाम हुए। जो आत्मसम्मान का क्षरण अंग्रेजों को अपेक्षित था, वह अपने आप होने लगा। हम इस ढाँचे के गुलाम हो गए। इसका इतना अधिक परिणाम हुआ कि स्वतंत्रता के बाद भी, हम उसी ढाँचे को आगे बढ़ा रहे हैं। जब तक इस ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन नहीं किया जाता, तब तक पाठ्यक्रम के परिवर्तन भी पूर्णतः प्रभावी नहीं होंगे। भारतीय शिक्षण मंडल के प्रारूप में पाठ्यक्रम से अधिक ढाँचागत परिवर्तन पर ध्यान दिया गया है। इस शिक्षण



प्रारूप के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं।

शिक्षा के ढाँचे में सबसे महत्वपूर्ण बात प्रबंधन के नियंत्रण की होती है। वर्तमान समय में शिक्षा व्यवस्था का सारा प्रबंधन शासन में केन्द्रित हो गया है। निजी स्वतंत्रपोषित संस्थायों को भी पाठ्यक्रम, प्रवेश संख्या व शुल्क आदि अन्य बातों के लिये सरकारी नियंत्रकों के अधीन रहना पड़ता है। अनेक समस्याओं की यही जड़ है। अतः भारतीय शिक्षण मंडल ने अपनी रूपरेखा में शासनमुक्त शिक्षा के प्रबंध की योजना प्रस्तुत की है। पूरे देश में शिक्षा की स्वायत्त व्यवस्था हेतु शिक्षाविदों के आयोग की रचना प्रस्तावित की है। यह आयोग शिक्षा प्रबंध के सभी पक्षों को संचालित करेगा। शासन इसमें कोई हस्तक्षेप न करे। आर्थिक व्यवस्था भी पूरी तरह से शिक्षा आयोग के हाथ में दी जाये। शासन केवल पर्याप्त मात्रा में वित्त उपलब्ध करा दे। उसके प्रयोग की प्राथमिकता, वितरण व लेखा का पूर्ण अधिकार शिक्षा आयोग को होगा। इस सन्दर्भ में भारतीय शिक्षण मंडल की रूपरेखा में यह प्रस्ताव किया गया है कि वर्तमान में शासन शिक्षा को उचित वरीयता प्रदान करे। अपने व्यय की 10 प्रतिशत राशि का प्रावधान शिक्षा मद पर करें। वैसे तो आदर्श का स्थिति में शिक्षा व्यवस्था का पूर्णतः शासन निरपेक्ष होना अपेक्षित है। शासन द्वारा नियंत्रण व हस्तक्षेप बंद किये जाने पर धीरे धीरे समाज का सहभाग बढ़ेगा। समाज द्वारा शैक्षिक संस्थानों का पूर्ण दायित्व ले लेने पर ही सच्चे अर्थ में शिक्षा स्वतंत्र होगी। प्राथमिक चरण में ऐसा नियम बनाया जा सकता है जिसमें सभी कंपनियों को अपने सामाजिक दायित्व के अंतर्गत खर्च करने की राशि में से कुछ निश्चित प्रावधान शिक्षा हेतु तय किये जाये।

शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे में एक और महत्वपूर्ण त्रुटि यह है कि इसमें समग्रता से विचार नहीं किया जा रहा है। प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, उच्चतर विश्वविद्यालय शिक्षा, इस प्रकार से बाँट

बाँट कर नीतियां बनायी जा रही हैं जिनका आपस में कोई तालमेल नहीं है। भारतीय शिक्षण मंडल की रूपरेखा में प्रावधान रखा है कि शिक्षा को एक साथ समग्रता से देखते हुए नीतियों का निर्धारण किया जाये। आयु के अनुसार भिन्न भिन्न स्तर रखने के स्थान पर गर्भ संस्कार से लेकर शोध तक पूरी शिक्षा का समग्रता से विचार किया जाये। उसी प्रकार कृषि, शिक्षा, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, विधि, औद्योगिक आदि व्यावसायिक विभाजनों को भी केवल शैक्षिक संकायों के रूप में रखा जाये। प्रबंध एवं नीति निर्धारण के लिए इन सबको एक ही छत्र में रखा जाये।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अत्यंत कठोर साँचे बनाये गए हैं। विद्यार्थी को उपलब्ध स्थानों के अनुसार विषय चुनने पड़ते हैं। उसकी अपनी रुचि और स्वभाव को कोई अवसर नहीं है। दसवीं के बाद उसे तय करना पड़ेगा कि आगे की पढाई किस विद्याशाखा में करनी है। विज्ञान, कला अथवा वाणिज्य तीन में से किसी एक का चुनाव करना होगा। यदि कोई छात्र कहता है कि मैं विज्ञान और गणित के साथ ही संगीत या साहित्य का अध्ययन करना चाहता हूँ, तो वर्तमान व्यवस्था उसे कोई विकल्प नहीं देती है। इस कठोरता के कारण न केवल विद्यार्थी अपने मन माफिक विषयों में अध्ययन से वंचित रह जाते हैं साथ ही देश को भी अनेक क्षेत्रों में सुयोग्य व्यक्ति नहीं मिल पाते। राष्ट्र और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षाव्यवस्था का लचीला होना अनिवार्य है। भारतीय शिक्षण मंडल द्वारा प्रस्तावित शिक्षण रूपरेखा में अत्यंत लचीली संरचना प्रस्तुत की है। विद्यार्थियों के समक्ष विविध विषयों में से कोई भी तीन चुनने के विकल्प के साथ ही दो-तीन वर्षों में विषय परिवर्तन की सुविधा भी रखी गयी है। शिक्षा में किसी भी आयु में विविध स्तरों पर प्रवेश तथा उच्च स्तरों में किसी भी समय निगमन की सुविधा है। जीवनयापन हेतु कार्य करने की अनिवार्यता के कारण शिक्षा में कोई

खंड न पड़े ऐसी व्यवस्था इस नीति में है।

शिक्षा के ढाँचागत सुधार हेतु ऐसे अनेक समग्र प्रावधान इस शिक्षण रूपरेखा में हैं। शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन हेतु, समाज का मन तैयार करना यह प्राथमिक आवश्यकता है। सरकारी स्तर पर परिवर्तन तो आवश्यक होगा किन्तु यदि समाज उस परिवर्तन हेतु तत्पर न हो, तो केवल कानून के बदल देने से व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होगा। दहेज विरोधी अधिनियम तथा दलित अत्याचार विरोधी अधिनियम इस बात के साक्षात् उदाहरण हैं। दोनों अधिनियमों के प्रावधान कितने भी अच्छे क्यों न हो, समाज में अपेक्षित मानसिक परिवर्तन न हुआ होने के कारण, इनका दुरुपयोग ही अधिक हुआ है। इसलिए भारतीय शिक्षण मंडल ने यह योजना बनायी है कि शिक्षा का प्रारूप पहले समाज के मध्य चर्चा का विषय बनाया जाए। आने वाले वर्ष भर सारे देश में इस प्रारूप पर चर्चा सत्र आयोजित किये जायेंगे तथा लाखों की संख्या में अभिमत पत्र [feedback form] भरवाये जायेंगे। इन में प्राप्त सुझावों को सम्मिलित करने के बाद, सुधारित प्रारूप को सभी राज्य सरकारों तथा केंद्र सरकार को दिया जायेगा।

यह प्रारूप भले ही भारतीय शिक्षण मंडल ने तैयार किया हो किन्तु अपेक्षा यह है की यह सारे समाज की शिक्षानीति हो। अतः सभी पाठकों से अपेक्षा है कि अपने स्तर पर इन विषयों पर चर्चा करे तथा अधिक से अधिक अभिमत पत्रों को भराकर भेजे। यह प्रारूप मंडल के जाल-स्थल (Web-site) www.bsmbharat.org पर उपलब्ध है। अभिमत पत्र गूगल फॉर्म के रूप में भर सकते हैं - <http://goo.gl/forms/IYGvx76Ntx>। हमारे संयुक्त प्रयासों से ही समर्थ भारत का निर्माण करने वाली सक्षम शिक्षा व्यवस्था का पुनर्निर्माण संभव होगा। इस वैचारिक आन्दोलन से ही भारत पुनः एक बार विश्वगुरु के पद पर आसीन होगा। □

(अखिल भारतीय सहसंगठन मंत्री,
भारतीय शिक्षण मंडल)

भारतीय शिक्षण रूपरेखा

अभिमत प्रश्नावली

आपने रूपरेखा पढ़ी। अब कुछ समय लगाकर अपना अमूल्य अभिमत व सुझाव प्रदान करें

नाम पद संस्थान

जन्म दिनांक शहर

भ्रमणध्वनी (मो.) अणु डाक (ई-मेल)

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर (✓) चिह्न लगाकर दें। एक से अधिक विकल्पों पर (✓)।

1. शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिए?
 क) राष्ट्र-निर्माण हेतु ख) आजीविका पाने
 ग) व्यक्तित्व विकास घ) अन्य (स्पष्ट करें)

5. अष्ट वर्षीय सामान्य शिक्षा में 6-14 के सभी बालक-बालिकाओं को अनिवार्य प्रवेश की योजना से आप- क) सहमत हैं ख) असहमत हैं ग) सुधार चाहते हैं घ) अन्य (कारण सहित)

2. आपकी दृष्टि में वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सबसे प्रमुख कमी/दोष क्या है?

6. सामान्य शिक्षा को सुलभ व सर्वगम्य रखने हेतु उसके प्रस्ताविक पाठ्यक्रम पर विचार दें।

- क) गुणवत्ता का ह्रास ख) महंगी शिक्षा
 ग) भ्रष्टाचार घ) अव्यावहारिक पाठ्यक्रम
 ड) एकांगी विकास च) असंतुलित योजना
 छ) रोजगार को अधिक महत्व ज) अंग्रेजीकरण
 झ) अपर्याप्त संसाधन त्र) अन्य (स्पष्ट करें)

क्र.	विषय	सहमत	असहमत	पता नहीं	अन्य
1.	प्रथम भाषा- मातृभाषा				
2.	एक अन्य भाषा (2 साल में बदलने की सुविधा)				
3.	सामान्य गणित				
4.	जीवनोपयोगी विज्ञान				
5.	सामान्य शिक्षा				
6.	शारीरिक शिक्षा, श्रम, सफाई				
7.	नैतिक शिक्षा				

3. अनेक आयोगों की नियुक्ति व उनके द्वारा दिये विश्लेषण का शिक्षा सुधार पर क्या असर हुआ?

- क) कुछ नहीं ख) विपरीत
 ग) अपर्याप्त घ) संतोषजनक
 कारण क्या लगता है?

7. उच्च विद्यालयीन चतुर्वर्षीय शिक्षा में दो भारतीय भाषा एक शास्त्रीय भाषा, व्यवसाय कौशल के विभिन्न विकल्प, विज्ञान, कला, वाणिज्य के 3 विषय व नैतिक शिक्षा ऐसी व्यवस्था से आप - क) सहमत हैं ख) असहमत हैं ग) सुधार चाहते हैं घ) स्पष्ट करें।

4. शिक्षा के प्रारूप में किन बातों का समावेश अनिवार्य है?

- क) व्यवसाय कौशल ख) वैज्ञानिक दृष्टि
 ग) कला घ) खेल
 ड) मुक्त वातावरण च) आनंदी छात्र
 छ) संतुलित पाठ्यक्रम ज) अन्य (स्पष्ट लिखें)

8. विषय चयन में पूर्ण लचीलापन रहे इस बात से आप
 क) सहमत हैं ख) असहमत हैं
 ग) सुधार चाहते हैं घ) स्पष्ट करें

9. व्यवसाय कौशल में प्रयोग व व्यवहार पर सिद्धान्त से अधिक बल हो। प्रत्यक्ष कार्यानुभव को अधिक अंक मिलें इस नीति से आप -

- क) सहमत हैं ख) असहमत हैं
ग) सुधार चाहते हैं घ) स्पष्ट करें

.....
.....
.....

10. उच्च विद्यालयीन शिक्षा के पर्याय में सामान्य शिक्षा के बाद निम्न विकल्पों पर आपके विचार

क्र.	विकल्प	हाँ	ना	सुधार
1.	कार्य सहायक के रूप में प्रत्येक काम करना			
2.	उद्योग में प्रशिक्षु सहायक			
3.	ग्रामीण उद्योग संस्था में उपाधि			
4.	बहुउद्योग संस्थान			
5.	कृषि सहायक			

11. विश्वविद्यालयीन शिक्षा के प्रस्तावित आयामों पर अपने विचार बतायें।

क्र.	प्रस्तावित आयाम	सहमत	असहमत	सुधार
1.	विश्वविद्यालय स्वायत्त हो			
2.	प्रवेश संख्या की सीमा ना हो			
3.	सेतु पाठ्यक्रमों द्वारा वैकल्पिक माध्यम Polytechnic IIT] Aperatice से शिक्षा पाने वाले छात्रों को भी प्रवेश सुविधा			
4.	अवधि व व्यय के लचीले विकल्प निःशुल्क से मंहगे तक व कभी भी शिक्षा जारी रखना			
5.	50 अंकों की अनिवार्यता			
6.	सभी विषयों में अंक सुधार की सुविधा एक वर्ष अथवा 6 विषय प्रमाण पत्र, दो वर्ष अथवा 12 विषय पदवी, 3 वर्ष अथवा 16 विषय मानद पदवी			
7.	सभी स्तरों पर प्रमाणीकरण, एक वर्ष अथवा 6 विषय प्रमाण पत्र, दो वर्ष अथवा 12 विषय पदवी, 3 वर्ष अथवा 16 विषय पदवी मानदपदवी			
8.	स्नातकोत्तर में शोध व लेखन को अधिक महत्व			
9.	अन्य सुझाव -			

12. व्यावसायिक शिक्षा के आयामों पर विचार

क्र.	आयाम	सहमत	असहमत	सुधार
1.	कोई प्रवेश परीक्षा नहीं/ कार्यानुभव व योग्यता को प्राधान्य			
2.	कार्यक्षेत्र में लगाना अनिवार्य जैसे चिकित्सालय, उद्योग, न्यायालय में			
3.	व्यावहारिक प्रशिक्षण को महत्व			
4.	अन्य सुझाव			

13. परीक्षा व मूल्यांकन सुधार पर विचार

क्र.	आयाम	सहमत	असहमत	सुधार
1.	प्रथम व द्वितीय कक्षा में कोई परीक्षा नहीं			
2.	तीसरी-चौथी में केवल मौखिक परीक्षा			
3.	5-7 वीं तक लिखित परीक्षा			
4.	आठवीं से प्रायोगिक परीक्षा के 30-50 प्रतिशत अंक			
5.	नौवीं से आंतरिक मूल्यांकन			
6.	आंतरिक मूल्यांकन में कक्षा कार्य, गृहकार्य व व्यवहार का समावेश			
7.	आंतरिक मूल्यांकन व वार्षिक परीक्षा मिलाकर 50 प्रतिशत अंक प्राप्त होने पर अगली कक्षा में प्रवेश			
8.	केवल अंक सूची मिले उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण ना लिखें			
9.	सभी विषयों में सुधार की अनुमति			
10.	सुझाव			

14. नियमन व व्यवस्थापन बिन्दु पर विचार

क्र.	प्रस्तावित आयाम	हाँ	ना	सुधार
1.	समग्रता से शिक्षा का प्रबन्ध व नियमन हो, गर्भ संस्कार से शोध तक एक विचार			
2.	स्वायत्त आयोग की रचना हो			
3.	राज्य स्तर पर आयोग बने और जिले में शाखा हो			
4.	अन्य सुझाव			

15. किसी भी अन्य बिन्दु पर आपके विचार

.....
.....
.....
.....



श्री गुरुजी छात्रावास

उ.मा.आदर्श विद्या मन्दिर, राजापार्क, जयपुर

दूरभाष : 0141-2615249, 2612149, मो. 9799394656



(विद्या भारती से सम्बद्ध)

(विद्या भारती से सम्बद्ध)

हमारी विशेषताएँ

- उच्च योग्यता प्राप्त अनुभवी आचार्य।
- संस्कार युक्त शिक्षा पर विशेष आग्रह।
- नियमित खेलकूद एवं योग कक्षाएँ।
- खेलकूद हेतु विस्तृत मैदान एवं योग्य प्रशिक्षक।
- सुरुचिपूर्ण एवं पोष्टिक अल्पाहार एवं भोजन।
- स्नेह पूर्ण पारिवारिक वातावरण।
- वन विहार एवं देश दर्शन कार्यक्रम।
- एक बड़े कक्ष में 4 छात्रों को आवास सुविधा।
- शैक्षिक उन्नयन हेतु अतिरिक्त कक्षाएँ।
- स्पोकन इंगलिश की विशेष कक्षाएँ।
- एन.सी.सी., एन.एस.एस. एवं अन्य सह शैक्षिक गतिविधियाँ।
- श्रेष्ठ परीक्षा परिणाम।

(छात्रावास शुल्क 48,000/- वार्षिक, शिक्षण शुल्क अतिरिक्त)

आलोक:- कक्षा 11 वीं में अंकों के आधार पर प्रवेश दिये जाते हैं।

कक्षा नवीं, दशवीं व बारहवीं में प्रवेश-परीक्षा के आधार पर किये जाते हैं।

विशेष: कक्षा 10 में 90 प्रतिशत से अधिक अंक वाले छात्रों को शुल्क में 10,000 रुपये की छूट

पंजीयन फार्म 200 रु नकद
अथवा 250 रु. का बैंक ड्राफ्ट
भेजकर भेगा सकते हैं।

संकाय		
विज्ञान वर्ग	वाणिज्य वर्ग	कला वर्ग
गणित	गणित	भूगोल, इतिहास
जीव विज्ञान	अर्थशास्त्र	राजनीति विज्ञान
	कम्प्यूटर	लोक प्रशासन
	टंकण	हिन्दी, संस्कृत, अर्थशास्त्र

1. डॉक्टर	540
2. इंजीनियर	2652
3. सी.ए.	162
4. सी.एस	130

सत्र 2013 विज्ञान (लगभग 90 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले छात्र)			
भैया का नाम	भौतिक वि.	रसायन वि.	गणित (जीव)
दीपक वैरवा	93	92	88
पवन गुर्जर	96	95	82
सुनील शर्मा	89	94	87
वैकटेश	89	89	92(जीव)
संजय चौधरी	98	90	97
जितेन्द्र जायसवाल	96	95	97

सत्र 2014 का परीक्षा परिणाम			
भैया का नाम	भौतिक वि.	रसायन वि.	गणित (जीव)
आलोक शर्मा	89	92	97
अमित पंसारी	91	89	91
हवासिंह गुर्जर	91	89	95
संजय वालीवाल	90	91	96
	लेखाशास्त्र	व्य.प्रबंधन	गणित
करन अटवानी	94	89	96
विशेष भगत	91	89	91

पूर्व विद्यार्थी हमें जिन पर गर्व हैं

1. श्री अनिल कौशिक	भू.पू., डीजीपी पंजाब पुलिस
2. श्री आशीष आनन	आई.पी.एस.
3. डॉ. प्रवीण मित्तल (IAS)	सहायक आयकर आयुक्त
4. श्री उषस्पति त्रिपाठी	आई.ए.एस.
5. श्री दुष्यंत मुद्गल (IPS)	निदेशक (डाक विभाग)
6. श्री सौरभ सिंह शेखावत	भारतीय सेना में अधिकारी (2 बार के एवरेस्ट विजेता)
7. श्री शैलेन्द्र शर्मा (IAS)	अतिरिक्त आयकर आयुक्त
8. श्रीकृष्ण कुमार पारीक	उप महाप्रबन्धक, रेल परिचालक, उ.प.रेलवे

9. श्री राजीव सिंह	जन सूचना अधिकारी उ.प.रेलवे
10. डॉ. मनोहर अगनानी	आई.ए.एस. मध्य प्रदेश
11. श्री मुकुल शर्मा	आर.ए.एस.
12. श्री विनू कौशिक	आर.ए.एस.
13. श्री सुरेश यादव	आर.ए.एस.
14. श्री चन्दन दुबे	आर.ए.एस.
15. श्री योगमित्र दिनकर	आर.ए.एस.
16. डॉ. जगत प्रसाद नरुला	विश्व प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ, अमेरिका

अध्यक्ष
दामोदर दास मोदी

प्रधानाचार्य
रामानन्द चौधरी

शिक्षा के बदलाव का कैसा हो मार्ग

□ डॉ. दीनानाथ सिंह

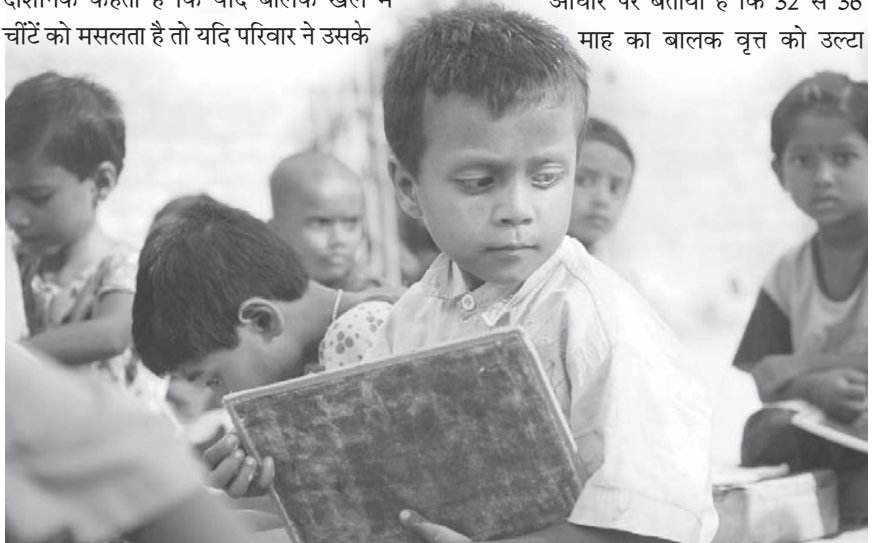


वस्तुतः शिक्षा राष्ट्र जीवन का खून चूस रही है तथा समाज जीवन को बोझिल बना रही है तथा अध्ययन के आधार पर परीक्षा से उपाधि लेने वाला न तो सड़क पर बोझ ढोने के काबिल बन रहा है न ही जंगल में भेंड़ चराने के काबिल। चुनौती है विशेषज्ञता में समग्रता का अभाव बना रहने की। विशिष्ट उत्पादन किसी न किसी क्षेत्र का निर्माण करता है। बुद्धि लब्धि न हो तथा गांधी जी के शब्दों में बौद्धिकता की जगह बुद्धिनिष्ठा हो। खुला चित्त (Open Mind) हो शिक्षा में सत्य के दर्शन के लिए दृष्टि बिन्दु बन सके।

जन्म लेने से पूर्व चालीस सप्ताह माँ के गर्भ में बालक के शरीर का निर्माण होता है। ऐसी अवस्था में बालक के पुष्ट करने लायक पर्यावरण की आवश्यकता होती है। इस अवधि में माँ-पिता एवं परिवार के सदस्यों के सजग आदत एवं खान-पान के व्यवहार की आवश्यकता होती है, जो जन्म लेने वाले बालक के परिमाणान्तर परिवर्तन की अभिवृद्धि में सहयोग करता है। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ स्कूल या विद्यालय नहीं होता किन्तु अभिवृद्धि (Growth) की प्रक्रिया चलती रहती है। बालक के जन्म के बाद का 5 वर्ष तक का समय बच्चे की अभिवृद्धि (Growth) और विकास (Development) दोनों का समय प्रारम्भ होता है। किन्तु तीन वर्ष तक बच्चे के विकास का सम्पूर्ण दायित्व माँ-बाप एवं परिवार के सदस्यों का है। बालक 3 वर्ष में वाक्य बोलने, 4 वर्ष में संख्या व आकार के ज्ञान तथा 5 वर्ष की आयु में वह समाज से परिचय में आ जाता है। 3 और 4 वर्ष की आयु में परिवार के सदस्यों को बच्चे की गतिविधि का निरीक्षण करने उसके मनोविज्ञान को पहचान कर उसके लिए शिक्षा का अवसर निर्धारित करना चाहिये। किर्गेगार्ड दार्शनिक कहता है कि यदि बालक खेल में चींटों को मसलता है तो यदि परिवार ने उसके

मनोभाव को पहचानकर अवसर दिया तो बालक आगे चलकर अच्छा सर्जन बन सकता है। अवसर के अभाव में वह निर्दयी या कसाई बन सकता है। यह द्रष्टव्य है कि देश में बालकों की शिक्षा व्यावसायिक स्कूलों में तीन वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो जाती है। इस कारण न तो उसके परिवर्तन में अभिवृद्धि हो पाती और न ही गुणात्मक तथा परिणामात्मक विकास। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा पर चर्चा करते समय बालक को कैरियरिस्ट बनाने की तुलना में समाज से जोड़ने की बात कही थी। कारण कैरियर बालक को व्यक्तिवादी बना देता है तथा समाज में उसकी सहभागी भूमिका नहीं बन पाती। जैसा आज के व्यावसायिक विद्यालय कर रहे हैं। बुनियादी शिक्षा का मर्म ही है शिक्षा का आरम्भ अक्षर बोध, आत्मबोध स्वावलम्बन के साथ-साथ समाज से जुट जाना।

आज की शिक्षा आकस्मिक परिवर्तन के रास्ते पर चलायी जा रही है जहाँ व्यक्ति के विकास की गति में विभिन्नता को न तो पहचाना जाता है और न ही उसकी विभिन्नता अन्तों से अलग विकसित ही हो पाती। बालक की शिक्षा का आरम्भ गत्यात्मकता और भाषा से आरम्भ होनी चाहिये। शिक्षा ग्रहण के तरीका का प्रयोग शर्लें, गेअेल, नियाजे, ऐनिस आदि ने किया है तथा परीक्षण के आधार पर बताया है कि 32 से 36 माह का बालक वृत्त को उल्टा



बनाता है। 60 माह का बालक सीधा वृत्त बनाता है तथा 72 माह का बालक फिर उल्टा बनाता है। गत्यात्मकता विकास दिशा का सिद्धांत है। सिर और पैर के संबंध का सिद्धांत है। पहले बालक सिर को उठाता है फिर अन्य अंगों का संतुलन करता है फिर पैर पर खड़ा होता है। यही सिर से पैर की दिशा शिक्षा के क्षेत्र में विकास दिशा का सिद्धांत है। यहाँ विकास को एक विचार या प्रत्यय (Idea or Concept) मानना भूल होगी। विकास शिक्षा का व्यवहार है। आत्मिक विकास और बाह्य विकास दोनों शिक्षा से संभव है जिसे विद्यालय वातावरण प्रदान करते हैं।

प्रश्न है कि सिद्धांत का प्रत्यय ज्ञात होते हुए भी गांधी जी की बुनियादी शिक्षा उभरते या बढ़ते भारत में शिक्षा का बुनियाद क्यों नहीं बन पायी? शिक्षा अधिगम है। सभी कौशल स्वचरित्र से सीखने का शिक्षण शिक्षा है। अक्षर ज्ञान के लिए छात्र का विद्यालय में प्रवेश इस कारण बुनियादी है कि अक्षर ज्ञान से बालक का सौन्दर्य बढ़ जाता है। दूसरा पक्ष बालक के कौशल का होता है उसमें तब विकास होगा जब उसे हस्तकौशल का शिक्षण मिलेगा। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा में अक्षर ज्ञान से शिक्षा और कौशल शिक्षण से क्रिया क्षमता का विकास होता है। यह प्रक्रिया बालक के मनुष्यत्व का अंग का रूप ले लेती है। यही तत्व मनुष्य और पशु में प्राथम्य लाता है। गांधी जी जिस बुनियादी शिक्षा की बात करते थे उसमें बुद्धि की सच्ची शिक्षा हाथ, पैर, आँख, कान, आदि शरीर के अंगों का ठीक अभ्यास और शिक्षण से थी ताकि बुद्धि के एकांगी विकास की अपेक्षा मस्तिष्क का चतुर्मुखी विकास हो तथा शिक्षार्थी स्वावलम्बी बन सके। बुद्धि और शरीर में सुमेल न होने के कारण विकृत संस्कारों के कारण शिक्षा समाज देश के साथ नहीं जुड़ पाती कारण शिक्षार्थी की शिक्षा उसके स्वयं की बुद्धि, स्थूल शरीर, हृदय

और आत्मा से सुमेल नहीं हो पाती जिससे मनुष्य का निर्माण होता है। अपनी जीविका, आत्मनिर्भरता, श्रम का तिरस्कार हाथ की तालीम के कमजोर होने से राष्ट्र कोई चीज है इसकी जानकारी कमजोर हो जाती है।

एक उपाय उच्च शिक्षा से कायापलट तरीके द्वारा तेजी से आरम्भ हो चला है। शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना। इसका अभिप्राय उपाधियों को भिन्न-भिन्न उद्योगों से जोड़ना। परिणाम स्वरूप देश में उद्योगों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप अलग-अलग तालीम की इमारतें खड़ी हैं। उसको संचालित करने के लिए तजुबे वाले मालिक भी खड़े हो गये हैं। ये शिक्षा महंगी है तथा ऐसी शिक्षा की आकांक्षा रखने वाले सभी लड़के-लड़कियों को शिक्षा सुलभ नहीं है। यह तरीका शिक्षा में उद्वेग को जगाकर युवकों को दिग्भ्रमित करती है। यहाँ शरीर के अव्यवय से काम लेने की बात भद्रोचित नहीं माना जाता तथा कार्य मशीन के माध्यम से होता है, जहाँ विश्वविद्यालय खालिस परीक्षा लेने वाली संस्थायें मात्र रह गई हैं। वे कमाई के साधन बनते जा रहे हैं। यह किसके लिए कमाई है पता नहीं।

किंतु ढाँचागत दृष्टि से मूल्यांकन करें तो स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा की देश की जनसंख्या की दृष्टि से संरचनात्मक स्थिति ठीक नहीं है। पूरे विश्व में 9479 विश्वविद्यालय हैं। भारत में 687 विश्वविद्यालय हैं जिसमें निजी क्षेत्र के 192 और डीम्ड विश्वविद्यालय की 128 संख्या भी शामिल है। छोटा देश जापान जहाँ की जनसंख्या 12,70,70,000 है वहाँ 567 विश्वविद्यालय हैं उससे भी हम पीछे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या 31,93,16,000 है तथा वहाँ विश्वविद्यालयों की संख्या 2204 है। भारत में जनसंख्या 125 करोड़ से अधिक है उसकी तुलना में देश के 687 विश्वविद्यालय अति न्यून हैं। उच्च शिक्षा में

मात्र 20 लाख छात्र पंजीकृत हैं इनमें 37 प्रतिशत मानविकी, 19 प्रतिशत विज्ञान, 18 प्रतिशत कामर्स और प्रबंध तथा 16 प्रतिशत तकनीकी अध्ययन क्षेत्र के छात्र हैं। अध्ययनरत छात्रों में स्नातक छात्र 86 प्रतिशत, स्नातकोत्तर 12 प्रतिशत तथा शोध कार्य में मात्र 01 प्रतिशत छात्र शामिल हैं। ऐसी दशा में शिक्षा से तैयार छात्र पूरे देश का किस ढंग का विकास करेंगे यह टेढ़ा प्रश्न है। उससे भी जटिल प्रश्न है शिक्षा के बाद के छात्रों की भयावह बेरोजगारी तथा नौकरी के लिए उनसे भर्ती के तरीकों में भागीदार होने के लिए भारी शुल्क की वसूली। यह तस्वीर विकास के साझेदारों के बेकार होने की है तथा युवा शक्ति के भटकाव की है। उच्च शिक्षा में कोई बुनियादी तत्व तो है ही नहीं।

वस्तुतः शिक्षा राष्ट्र जीवन का खून चूस रही है तथा समाज जीवन को बोझिल बना रही है तथा अध्ययन के आधार पर परीक्षा से उपाधि लेने वाला न तो सड़क पर बोझ ढोने के काबिल बन रहा है न ही जंगल में भेंड़ चराने के काबिल। चुनौती है विशेषज्ञता में समग्रता का अभाव बना रहने की। विशिष्ट उत्पादन किसी न किसी क्षेत्र का निर्माण करता है। बुद्धि लब्धि न हो तथा गांधी जी के शब्दों में बौद्धिकता की जगह बुद्धिनिष्ठा हो। खुला चित्त (Open Mind) हो शिक्षा में सत्य के दर्शन के लिए दृष्टि बिन्दु बन सके। किन्तु, आज की शिक्षा 'ओवर स्पेशलाइजेशन' की बात करती है। शिक्षा से जीवन की समग्रता की दृष्टि बने इसलिए शिक्षा की कार्यात्मकता प्रभावी होनी चाहिये जहाँ टेलिफ़ोन और कारीगरी साथ-साथ पनपें। गाँव यदि कुम्हारों का हो तो कुछ घर बसने वाले लोहारों का महत्व उनकी कार्यात्मकता के कारण बना रहेगा। जरूरत है इस प्रकार की कार्यात्मक संरचनात्मकता की। फलतः पहले जरूरत है विश्वविद्यालयों को स्वावलम्बी बनाकर उन्हें राष्ट्र जीवन से जोड़ना। □ (प्रोफेसर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय)



प्रत्येक देश के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि भावी जरूरतों, विकास कार्यक्रमों, विभिन्न क्षेत्रों में मानव शक्ति की खपत का सटीक अध्ययन-विश्लेषण कर उच्च शिक्षा के भावी पाठ्यक्रमों और उनमें प्रवेशार्थियों की संख्या आगामी वर्षों के लिए सुनिश्चित कर ले। दुर्भाग्य से हमारे देश में इस प्रकार का कोई गंभीर अध्ययन नियमित रूप से नहीं होता है। इसी कारण देश में अचानक कभी लाखों इंजीनियर, कभी आई टी विशेषज्ञ, कभी प्रबंध विशेषज्ञ बेरोजगारों की भीड़ हो जाती हैं। अभियांत्रिकी जैसे पाठ्यक्रमों की संस्थानों में 80 प्रतिशत सीटें खाली रह जाती हैं। आखिर यह ज़िम्मेदारी किसकी है ?

उच्च शिक्षा : भोथरे हथियार और अनिश्चित लक्ष्य

□ डॉ. हरीदास व्यास

स्वतंत्रता के बाद देश के समग्र विकास के लिए कुछ विषय केवल केंद्र के अधीन रखे गए, कुछ साझा विषय थे और कुछ विषय पूरी तरह राज्यों को सुपुर्द किए गए - विभिन्न संस्कृति, रहन-सहन, भौगोलिक-सामाजिक परिस्थितियों और स्तर विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा राज्य के विषय के रूप में स्वीकृत हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिकार प्राप्त कर केरल अपनी प्रतिबद्धता तथा अन्य अनुकूल परिस्थितियों का लाभ लेते हुए देश का पहला साक्षर राज्य हो कर और राज्यों के लिए प्रेरणा बन गया। परन्तु राजस्थान प्रारम्भिक वर्षों में इस दृष्टि से बेहद पिछड़ा ही रहा। राजस्थान में स्कूली शिक्षा की ठोस आधारभूत स्थितियां 20वीं सदी के सातवें दशक में बनने लगी थीं। अतः यहाँ उच्च शिक्षा पर व्यापक, सार्थक और गंभीर विमर्श भी विलम्ब से ही प्रारम्भ हो सका।

20वीं सदी के आखिरी दशक में राष्ट्र निर्माताओं और शिक्षाविदों को देश के लिए अभिशाप बनी जनसंख्या में ही वरदान दिखाई देने लगा। विकसित एवं पश्चिम के अनेक देश जनशक्ति के अभाव में असहाय होकर बहुसंख्यक आबादी वाले देशों की ओर देख रहे थे, तब भारत ने भी अपनी विशाल आबादी; विशेष रूप

से विश्व में सर्वाधिक युवा आबादी वाला देश होने के कारण स्वयं को जन शक्ति निर्यात की सर्वाधिक सम्भावनाओं वाले देश के रूप में अनुभव किया। उस समय देश में उच्च शिक्षा की ओर नए आयाम से सोचना आरंभ किया। उस समय नई शिक्षानीति पर नए सिरे से विचार आरम्भ हुआ। विश्व में भारतीय तकनीकी जानकारों और चिकित्साकर्मियों की बढ़ती मांग के साथ अन्य क्षेत्रों में भी संभावना तलाशनी प्रारम्भ की। इस तलाश में उच्च शिक्षा की अनेक कमियाँ स्पष्ट हुईं जो दुर्भाग्य से कम होने की बजाय बढ़ कर आज और चिंतनीय हो गयी हैं।

कबूतर बन बैठे हुए जिम्मेदार

कुछ अपवादों को छोड़ दें तो शेष महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों की कक्षाओं में खाली फर्नीचर और सांय-सांय करती हवाएं हैं। उच्च शिक्षा जगत में ये उक्तियाँ सर्वज्ञात हैं - झंडे से झंडे तक, एडमिशन, इलेक्शन और एक्जामिनेशन। फिर भी अटेंडेंस रजिस्टर में सब उपस्थित सत्र भर में 150-180 कालांश होने का प्रमाण उच्च शिक्षा के इतिहास में अपवाद को छोड़ कर कम उपस्थिति के कारण नियमित विद्यार्थी के रूप में कोई विद्यार्थी अयोग्य नहीं माना गया तो फिर किसी विद्यार्थी की उपस्थिति कम करने का कोई औचित्य ही नहीं था। हाँ समय-समय पर एन



एस एस , रोवर्स स्काउट , महिला प्रकोष्ठ , वाई डी सी , छात्रसंघ समिति के विभिन्न कार्यक्रम कुछ कागजों पर तो कुछ बढ़ा-चढ़ा कर और तथाकथित सांस्कृतिक कार्यक्रम पूरे जोशोखरोश से संपन्न होते हैं। इन कार्यक्रमों में फूहड़ गीतों पर कूल्हे मटकाते युवा और आँख चुराते शिक्षकगण बेमेल संयोग से दिखाई देते हैं। कुछ संस्थाओं ने तो ये कार्यक्रम पूरी तरह से छात्रसंघ के हवाले कर शिक्षकों को इनमें उपस्थिति से अनौपचारिक मुक्ति भी दे दी है।

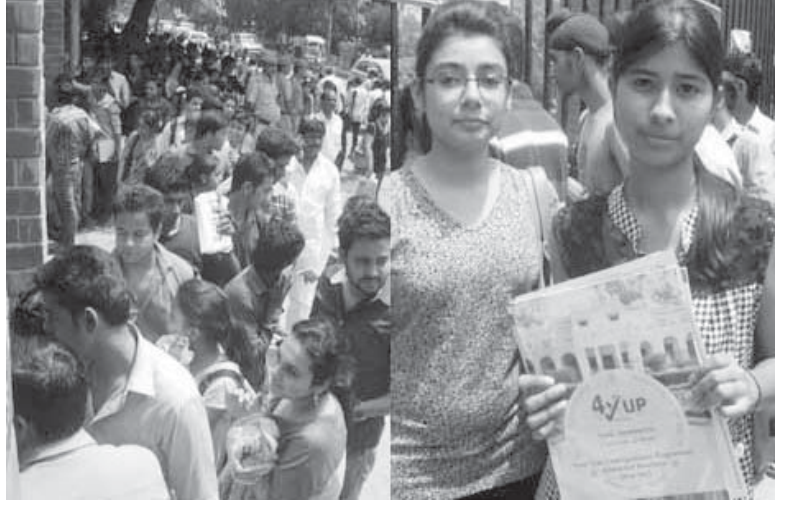
आज भी ग्रामीण विद्यार्थियों में से अनेक बहुत हसरत से खाली कक्षाओं में झाँकते हैं पर कक्षाओं के बाहर सिनेमा, टीवी, सोशल मीडिया, फ्रेंडशिप जैसे विषयों पर अति गंभीर चर्चा करते विद्यार्थियों के समूहों और स्टाफ रूम में शिक्षणपर विषयों पर गंभीर बहस करते शिक्षकों को देख कर ये विद्यार्थी दूरदराज अपने घरों को साइकिल या बस से लौट जाते हैं।

यह दुःखद तथ्य है कि सामान्य पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त गणित, अंकेक्षण तथा विज्ञान के सैद्धांतिक विषयों में ही नहीं प्रायोगिक विषयों की कक्षाओं में भी इक्का-दुक्का विद्यार्थी ही दिखाई देते हैं। अब यह भी आश्चर्य का विषय नहीं रहा कि अभियांत्रिकी, चिकित्सा और आई टी जैसे विषयों में भी विद्यार्थियों की उपस्थिति दयनीय हो गयी है। जाहिर है हम कैसे शिक्षितों का निर्माण कर रहे हैं।

औपचारिकता भर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

1956 में संसद के अधिनियम द्वारा सरकार के अधीन लिये गए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को शिक्षा के संवर्द्धन, समन्वयन, शिक्षण, परीक्षा-आयोजन और शोधन के क्षेत्र में सम्बंधित विश्वविद्यालयों के साथ विचार विमर्श कर के उचित कार्यवाही करने का उत्तरदायित्व दिया। आयोग में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष के अतिरिक्त सरकार द्वारा नियुक्त 10 अन्य सदस्य भी होते हैं।

इस आयोग की सार्थकता और कार्य



शैली पर अभी ही नहीं, पहले भी प्रश्न उठते रहे हैं। विश्व परिदृश्य में आए परिवर्तनों के अनुरूप देश में पाठ्यक्रमों और पद्धतियों में दूरगामी संशोधन करने में आयोग प्रायः असफल रहा है। यही कारण है कि देश के कुछ विश्वविद्यालयों में सूचना प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर शिक्षा, मीडिया, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, शोध प्रविधि जैसे विषयों के अनुपयोगी हो चुके पाठ्यक्रम अनेक सत्रों तक औपचारिकता के लिए पढाए जाते हैं। पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता विकास के लिए की जाने वाली बैठकों में लिए जाने वाले निर्णय भी चौथे जेनरेशन की जरूरतों को पूरा करने में असफल रहे हैं। यही कारण है कि दशकों से वैज्ञानिक आविष्कारों के क्षेत्र में हमारा योगदान लगभग शून्य है। जबकि दूरदराज गाँवों के अनपढ़ लोगों द्वारा जुगाड़ आविष्कार हमें चकित करते हैं। जाहिर है इन प्रतिभाओं तक पहुँचाने में भारतीय उच्च शिक्षा पूरी तरह से असफल रही है। यही नहीं नब्बे के दशक में विदेशों में अधिकतर दायम दर्जे के पदों पर भारतीय तकनीज्ञों की जो मांग थी उसका ग्राफ भी तेजी से गिरा है, इसका प्रमुख कारण पाठ्यक्रमों में तकनीकी कौशल के विकास में आयोग की असफलता है।

वस्तुतः आयोग ने भी तकनीकी शिक्षा में प्रायोगिकी शिक्षा के महत्व की अनदेखी करते हुए दूरस्थ शिक्षा को बी सी

ए, एम सी ए , आई टी जैसे पाठ्यक्रम पढ़ाने की अनुमति दे दी। इन दूरस्थ विश्वविद्यालयों में पर्याप्त प्रायोगिक कक्षाओं के अभाव ने इन पाठ्यक्रमों का महत्व कम कर दिया।

चूँकि दूरस्थ शिक्षा में सभी विद्यार्थियों को पाठ्य सामग्री उपलब्ध करवानी होती है, अतः ये विश्वविद्यालय पुरानी पाठ्य सामग्री को निरस्त कर पाठ्यक्रमों के नवीनीकरण और उसके अनुरूप नई सामग्री के मुद्रण व वितरण में बहुत लंबा समय लगाते हैं जो तकनीकी शिक्षा और विद्यार्थियों के लिए कतई स्वीकार्य नहीं होता है।

तकनीकी पाठ्यक्रमों के नवीनीकरण और प्रायोगिक कक्षाओं की दिशा में अनेक नियमित विश्वविद्यालयों की स्थिति भी बहुत बेहतर नहीं है। उच्च शिक्षा की बेहतर गुणवत्ता और विकास के लिए आयोग के लिए छः क्षेत्रीय कार्यालय और पंद्रह सहायक संस्थाओं का प्रावधान भी किया गया। फिर भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रमुख रूप से देश के विश्वविद्यालयों-महाविद्यालयों को आर्थिक अनुदान देने वाली एक संस्था मात्र बन कर रह गया है। अतः केंद्र सरकार के लिए अब यह आवश्यक हो गया है की आयोग के स्थान पर एक नया संगठन स्थापित करे तथा जिसे शिक्षा की गुणवत्ता, नवीनीकरण, प्रसार और भावी शैक्षिक जरूरतों जैसे कार्य प्रमुखता और वैज्ञानिकता

के साथ करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाए।
दोषपूर्ण परीक्षा एवं मूल्यांकन पद्धति

उच्च शिक्षा में परीक्षा पद्धति के सन्दर्भ में अनेक बार प्रयोग किए गए हैं। उच्च शिक्षा में केवल वार्षिक परीक्षा अपर्याप्त लगी तो मध्य सत्र में परख का प्रावधान किया गया, जिसके प्राप्तांक मूल परीक्षा में नहीं जोड़े जाते हैं। औपचारिकता भर के लिए अनेक महाविद्यालयों में आज भी परख का कागजी आयोजन होता है। अनेक विषयों की प्रकृति व कक्षाओं में विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ाने हेतु सिमेस्टर परीक्षा पद्धति का भी प्रारंभ किया गया। पर प्रशासनिक कुशलता के अभाव में तीन वर्ष के पाठ्यक्रम बामुश्किल चार वर्षों में जब होने लगे तो अभियांत्रिकी, चिकित्सा, आई टी जैसे कुछ पाठ्यक्रमों को छोड़ कर अन्य से यह पद्धति हटा दी गयी। इसी प्रकार इंटरनल असेसमेंट को भी व्यापक रूप से हटा दिया गया।

उच्च शिक्षा में कोई पांच प्रश्न परीक्षा पद्धति ने शिक्षा के महत्व को ही कम कर दिया। इसी पद्धति के कारण इम्पोर्टेंट देने-लेने का प्रचलन चल पड़ा। इस कारण से किसी विषय का आधा पाठ्यक्रम पढ़ कर भी प्रथम श्रेणी अंक लाना संभव हो गया। अंततः प्रश्न पत्र का नया प्रारूप तैयार किया गया जिसमें अति संक्षिप्त, संक्षिप्त और व्याख्यापरक, तीन प्रकार के प्रश्नों का प्रावधान किया गया। निस्संदेह प्रश्नपत्र का यह प्रारूप अब तक का सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रारूप है जिसके कारण बेहतर अंक लाने के लिए पूरा पाठ्यक्रम पढ़ना अपरिहार्य हो गया है।

तकनीकी और प्रायोगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पाठ्यक्रमों की परीक्षाएं ऑनलाईन भी करवाई जाने लगी। परन्तु इस ऑनलाईन परीक्षा को ओ एम आर शीट परीक्षा में बदलने का भी एक अजीबोगरीब उदाहरण राजस्थान में देखा जा सकता है - अब्बल तो राजस्थान सरकार का यह निर्णय ही सवालों के घेरे में है कि प्रदेश में अनेक नियमित विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय

होने के उपरान्त भी कम्प्यूटर दक्षता में आधार भूत योग्यता की अत्यंत बड़ी आर.के. सी.एल. परीक्षा का जिम्मा दूरस्थ शिक्षा संस्थान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय को करोड़ों रुपयों की आय करवाने हेतु सौंपा गया। और फिर, इस विश्वविद्यालय ने अपनी प्रशासनिक अयोग्यता के चलते इस ऑनलाईन परीक्षा को ओ एम आर शीट परीक्षा में बदल दिया।

वैसे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का ग्राफ नीचे लाने में दूरस्थ शिक्षा की बहुत बड़ी भूमिका है। इसमें 30 प्रतिशत अंक सत्रीय कार्य हेतु निर्धारित होते हैं। इस सत्रीय कार्य के प्रश्नपत्रों में पूछे गए सरलतम प्रश्नों के उत्तर प्रायः विद्यार्थी घर बैठे पाठ्य सामग्री में से ज्यों के त्यों ही लिख लेते हैं। कई विद्यार्थी तो यह कार्य भी स्वयं न कर किसी और की लिखावट में करवा लेते हैं। दूरस्थ विश्वविद्यालय अपने सत्रीय प्रश्न पत्रों का स्तर सुधार कर विद्यार्थियों की लिखावट का नमूना सत्रीय कार्य जांचने वाले परीक्षक को उतर पुस्तिकाओं के साथ देने का प्रावधान कर सकते हैं।

वस्तुतः उच्च शिक्षा में उत्तरपुस्तिकाएं जांचने का विधान भी विचारणीय है। प्रायः सभी विश्वविद्यालय परीक्षा के पश्चात विभिन्न कस्बों-शहरों में उत्तरपुस्तिका केंद्र व उसका एक प्रभारी नियुक्त करते हैं। इन केंद्रों पर विभिन्न विषयों की हज़ारों उत्तर पुस्तिकाएं पहुँचती हैं। निस्संदेह इस विधि से समय पर परीक्षा परिणाम घोषित करने में बहुत सहायता मिली। परन्तु इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि अनेक परीक्षक अनेक विश्वविद्यालयों की उत्तरपुस्तिकाएं जांच कर एक 'सीजन' में 40 से 50 हजार रुपए तक कमाने का लक्ष्य भी पूरा कर लेते हैं, दूसरी ओर अनेक शिक्षक मूल्यांकन का कार्य ही नहीं करते हैं अतः यह मूल्यांकन कार्य कितना न्यायपूर्ण होता होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि इस दोष से बचने के लिए केन्द्रीय मूल्यांकन के प्रयास भी किये गए पर उसमें शिक्षकों ने पर्याप्त रुचि नहीं ली और यह

पद्धति केवल लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं तक सिमट कर रह गयी।

छात्र संघ चुनाव : एक गंभीर प्रश्न

यह बात सर्वविदित है कि छात्र संघ चुनावों के लिए लिंगदोह समिति की सिफारिशों की इन चुनावों में सरेआम धज्जियां उड़ाई जाती हैं। ना तो संस्था-प्रशासन और ना ही राज्य प्रशासन इन चुनावों को लिंगदोह-सिफारिशों के अनुसार करवाने को प्रतिबद्ध है। परिणामतः एक उम्मीदवार इन चुनावों के लिए लाखों रुपए खर्च करता है। हाथ से लिखे पोस्टरों की जगह धड़ल्ले से छपे पोस्टरों से बाज़ार और संस्था के आस-पास के क्षेत्र भरे रहते हैं। राजनीतिक पार्टियां भी इन चुनावों में परोक्ष-अपरोक्ष रूप से सक्रिय रहती हैं। दबाव और शराब का धड़ल्ले से प्रयोग होता है। अतः यह चिंता केवल शिक्षा जगत की ही नहीं बल्कि यह भी संकेत है कि भावी समय में हमारे राजनीतिज्ञ कैसे होंगे। यदि महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों के शिक्षाविदों और आम विद्यार्थियों से रायशुमारी ली जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय-आदेशों के कारण जिन वर्षों में छात्रसंघ चुनाव नहीं होते थे तब संस्थानों में शैक्षणिक कलेवर निरंतर बेहतर हो रहा था।

दिशाविहीन भाषानीति

शिक्षा ग्रहण और अभिव्यक्ति की भाषा का निरंतर परिष्कार दो समानांतर तथा एक दूसरे की पूरक धाराएं हैं। परन्तु दुर्भाग्य से उच्च शिक्षा में भाषा संबंधी दुलमुल नीति के कारण उच्च शिक्षा के प्रायः सभी पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों का भाषा स्तर चिंतनीय है। यह सर्वविदित है कि हमारा आज का विद्यार्थी किसी भी भाषा में कुशलतापूर्वक सम्प्रेषण करने में असफल है।

स्नातक स्तर पर केवल प्रथम वर्ष में हिन्दी या अंग्रेज़ी में से कोई एक भाषा लेनी होती है जिसे उत्तीर्ण करने के छः अवसर दिए जाते हैं। इतना ही नहीं अपितु इसके प्राप्तकों को विद्यार्थियों के कुल प्रतिशत में भी नहीं जोड़ा जाता। इस भाषा नीति के कारण भाषा का प्रश्नपत्र विद्यार्थियों

के लिए एक औपचारिक बोझ से अधिक कुछ भी नहीं है। विद्यार्थी को अध्ययनकाल में इस होने वाले नुकसान का अनुभव नहीं होता है परन्तु जब वह डिग्रियों के बाद चुनौतियों के चौराहे पर खड़ा होता है तब वह इस भाषाई अस्त्र के बिना जख्मी और पराजित होता है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी देश हैं जहाँ विद्यार्थी को न केवल तीनों वर्ष भाषा पढ़नी होती है अपितु स्नातक के बाद भी एक भाषा परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है जिसके न्यूनतम उत्तीर्णांक प्रथम श्रेणी अंक होते हैं।

राष्ट्र की भावी जरूरतें एवं उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम

प्रत्येक देश के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि भावी जरूरतों, विकास कार्यक्रमों, विभिन्न क्षेत्रों में मानव शक्ति की खपत का सटीक अध्ययन-विश्लेषण कर उच्च शिक्षा के भावी पाठ्यक्रमों और उनमें

प्रवेशार्थियों की संख्या आगामी वर्षों के लिए सुनिश्चित कर ले। दुर्भाग्य से हमारे देश में इस प्रकार का कोई गंभीर अध्ययन नियमित रूप से नहीं होता है। इसी कारण देश में अचानक कभी लाखों इंजीनीयर, कभी आई टी विशेषज्ञ, कभी प्रबंध विशेषज्ञ बेरोजगारों की भीड़ हो जाती हैं। अभियांत्रिकी जैसे पाठ्यक्रमों की संस्थानों में 80 प्रतिशत सीटें खाली रह जाती हैं। आखिर यह जिम्मेदारी किसकी है ?

उच्च शिक्षा के नीतिकारों को यह समझना होगा कि देश में बारहवीं तक आधारभूत शिक्षा है। उसके पश्चात की शिक्षा का रोजगारोन्मुखी होना अनिवार्य है। बेशक कुछ कला विषय जिज्ञासा के कारण ज्ञानार्जन चाहने वाले विद्यार्थियों के लिए होने चाहिए। पर अन्य कला विषय भी रोजगार से परोक्ष-अपरोक्ष रूप से संबंध होने चाहिए। भावी योजनाओं के अनुरूप

इनमें प्रवेशार्थियों की संख्या भी सुनिश्चित होनी चाहिए और उसी के अनुरूप शिक्षकों और कर्मचारियों की नियुक्ति होनी चाहिए।

परन्तु हमारे यहाँ आधारभूत शिक्षा से केवल चतुर्थ श्रेणी का रोजगार ही मिल सकता है। अतः आधारभूत शिक्षा प्राप्त कर सभी विद्यार्थी उच्च शिक्षा में प्रवेश चाहते हैं। देश में युवा ऊर्जा, शिक्षा संसाधनों और राष्ट्रीय मुद्रा का अपव्यय है। परन्तु इस दिशा में दूरस्थ शिक्षा के विश्वविद्यालयों ने अनेक रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों का निर्माण किया है जो बेशक अनुकरणीय है। उपर्युक्त सभी विषयों पर समग्र चिंतन कर समग्र रूप से कदम उठाने पर ही आशाजनक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं पर किसी एक बिंदु को महत्वपूर्ण मान कर शेष पर फिर कभी की नीति से काम किया तो लाभ तो दूर की बात; देश की ऊर्जा और संसाधनों का एक और दुरुपयोग होगा □

उच्च शिक्षा में भारत की बढ़ती साख

□ डॉ. मोनिका शर्मा

ब्रिटेन की प्रतिष्ठित पत्रिका टाइम्स हायर एजुकेशन की ओर से जारी 100 विश्वविद्यालयों की सूची में बेंगलुरु स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस को 25 वां स्थान मिला है। ब्रिक्स और अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं के चुनिंदा विश्वविद्यालयों की नवीनतम श्रेणी में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस को भारत की अव्वल यूनिवर्सिटी का दर्जा मिला है। यह न केवल एक सुखद खबर है, बल्कि इस ओर भी इशारा करती है कि भारत में शिक्षा क्षेत्र में स्तरीय बदलाव हो रहे हैं। जो वैश्विक स्तर पर भी मान्यता पा रहे हैं। द टाइम्स हायर एजुकेशन की रैंकिंग्स 2015 में शामिल किए गए कुल 100 विश्वविद्यालयों में बेंगलुरु के आईआईएससी को 25वां स्थान मिला है। नवीनतम रैंकिंग के अनुसार भारत के चार विश्वविद्यालय शीर्ष 40 में शामिल हैं। आईआईटी मुम्बई को 37वां और आईआईटी रुड़की को 38वां और चंडीगढ़ की पंजाब यूनिवर्सिटी को 39वां स्थान मिला है। इसके

अलावा सात अन्य विश्वविद्यालयों को भी शीर्ष 100 में जगह मिली है। भारतीय शिक्षण संस्थानों के इस सूची में शामिल होने पर टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग्स के संपादक फिल बैटी ने कहा कि यह भारत के लिए अच्छी खबर है क्योंकि इसके विश्वविद्यालय शीर्ष 100 में शामिल हैं, जो एक अच्छा संकेत है। निश्चित रूप से उच्च शिक्षा से जुड़े हमारे यहाँ की यूनिवर्सिटीज का इस फेहरिस्त में शामिल होना एक सकारात्मक और सुखद समाचार है।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक दौर में भारत के शिक्षण संस्थानों की वैश्विक स्तर पर स्वीकार्यता और मान्यता उच्च शिक्षा क्षेत्र में एक नया जोश तो लाएगी ही, छात्रों में भी आशा और विश्वास का संचार करने वाली भी साबित होगी। आमतौर पर विश्वविद्यालयों की ग्लोबल रैंकिंग में भारतीय संस्थानों को स्थान नहीं मिलता, तो यह सभी का मनोबल तोड़ने वाला होता है। आजादी के बाद भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की बुनियाद रखते हुए उन्हें वैश्विक स्तर पर प्रतिस्थापित करने का जो स्वप्न देखा गया, अब वह साकार होता

दिख रहा है। धीरे-धीरे ही सही, हमारे शिक्षण संस्थानों की विश्वस्तरीय पहचान बन रही है, जो देश के शैक्षणिक वातावरण को एक नई दिशा देने वाली है। प्रतिष्ठित पत्रिका टाइम्स हायर एजुकेशन की ओर से जारी इस सूची में भी हमारी शिखर शिक्षण संस्थाओं का स्थान पाना भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था की चमक को नया निखार देने वाला तो है ही, यह हालात और अनगिनत चुनौतियों के बावजूद उच्च शिक्षा में भारत भी अग्रणी देश बन सकता है। बस जरूरत है तो इस बात की कि देश में प्रशासनिक और शैक्षणिक नीतियां और प्रभावी बनें। स्वाभाविक रूप से इन संस्थानों की वैश्विक मान्यता देश की गरिमा ही बढ़ाएगी आज आतंकी हिंसा की लड़ाई हमारा देश लड़ रहा है, उसके लिए शिक्षा एक हथियार के समान है। युवाओं को दिग्भ्रमित होने से बचाने और सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक बदलावों की पुष्टभूमि देश में स्तरीय एवं उत्कृष्ट शिक्षण संसिान निर्मित करके किया जा सकता है। शिक्षित और कौशलयुक्त नागरिक किसी भी देश का भविष्य चमका सकते हैं। □



India is the second most populated nation in world with complex diversity existing in terms of caste, region, religion, gender, habitat, faith, beliefs, languages etc. In this Higher education is essential for the cultural, social, economic and sustainable development of individuals, society and nation. And obviously when we talk about development in education and research, four guiding principles of quality, access, equity and accountability should always be crucial. As we move from “Knowledge Society” to “Knowledge Economy”, they are expected to provide necessary manpower with skills and expertise to the public and private sector.

Problems of Tertiary Education and Research in Science

□ Prof. Madhur Mohan Ranga

In ancient India science education and research was major state affair but it loosed its significance with time due to flimsy infrastructural support, absence of equipment and state’s patronage. However some sporadic and endemic evidences of dedicated teacher and motivated students competently did quality job in science education and research.

India is the second most populated nation in world with complex diversity existing in terms of caste, region, religion, gender, habitat, faith, beliefs, languages etc. In this Higher education is essential for the cultural, social, economic and sustainable development of individuals, society and nation. And obviously when we talk about development in education and research, four guiding principles of quality, access, equity and accountability should always be crucial. As we move from “Knowl-

edge Society” to “Knowledge Economy”, they are expected to provide necessary manpower with skills and expertise to the public and private sector.

Today vast numbers of students aspire for higher education and also demand for Indian skill is rising everywhere. In a welfare state like India still social access to science education and research is still important in the country. This only seeks for quantity rather than quality so how does quality education and research fit into a quantity-based system. Actually, it is impossible to bring equity in quality of education across all sections and also unnecessary to make every student a high profile researcher. Research is elitist, exclusive, discriminatory, and at the highest levels of outstanding quality. Sadly, the present higher education system is at a cross road characterized by neither quantity nor quality. Not a single Indian university including prestigious IITs found its place in world’s top 200 Universities in



“Times Higher Education World University Rankings 2013-2014” based on performance indicators of teaching, research, knowledge transfer and international outlook. We start with 40.2 score and 239th position credited to Punjab University.

As per AISHE, 2013 India has nearly 700 degree awarding institutions including 574 universities and 35,539 colleges where more than 20,327 thousand students are enrolled. The pupil-Teacher Ratio is 25.6. Surprisingly after passing secondary examination only 11.94% of total students opt for science in tertiary education. Sadly, from 2006 to 2012, there is only 59.59% increase in total enrollment in science stream. It is noteworthy that in early 1950s 32% students opted science for tertiary education. It seems that no one is really interested in a B.Sc. degree because students, their peer groups and their parents do not perceived science as a serious career option. Nearly 44.5% of students denied pursuing science after senior secondary examinations due to lack of interest.

And the students who opted for science in senior secondary level have to prove themselves through the screen of pre-medical and pre-engineering entrance. Obviously only remainder of this screening would available for the B.Sc courses. Moreover, the best in the B.Sc. first year devote themselves to the preparations for these tests for admission to professional colleges. And as a result most of our classes became deserted. Obviously from this substandard crowd of undergraduates some ultimately become Ph.D. scholars. No university or college seriously understood and acted for this problem of deteriorating student quality that ultimately leads to deterioration in teaching and research.

To fill up the vacuum created on account of inadequacy and credibility of existing system, parallel coaching institutions have come up. They are a response to social demands which universities and colleges have failed to meet. Today, the rot has spread all the way to the top. Students do not want to enter a scientific career because

they do not see attractive economic prospects at the end of their studies.

Significant scientific presence of fundamental research and teaching is a benchmark of performance of university necessary for quality development. But instead of scientific outlook most of our universities were established as examination-oriented bodies with affiliated colleges where significant research did not take place. Sadly, in place of curing the sore government established separate institutions for research. This unfortunate move derailed universities from its goal towards creating knowledge society with new capabilities and intelligence human resource pool, through challenging teaching, research and extension activities so as to balance both need and demand.

A paradigm shift has been noticed in higher education now a day from teacher-centric education to learner centric education. This change created new demands and posed fresh challenges to the established education system and



practices in the country. Central universities are small in number but they provide better checks and balances for maintaining quality based on peer-review norms than do other institutions. But state universities are really unprivileged in the entire academic system with 58 per cent teaching positions vacant. As around 90 per cent of students in university department are enrolled in state universities, such a high number of vacant positions have disastrous effect on both the quantity and quality of teaching and research. The situation is not different in colleges. As many as 52 per cent of the vacancies at the lecturer level and 42 per cent at the level of reader are lying vacant in colleges, that led to the employment of ad-hoc teachers. The ratio of ad-hoc teachers to regular is as high as 0.38 in colleges and 0.33 in state universities. Moreover 72.8% colleges are running in private sector which caters 61% of total enrollment. Recently in 2007, chronicle of higher education revealed that 68% of universities and 90% of affiliated colleges have “middling or poor quality” and near about half of faculty lack proper qualification.

Most of our universities and colleges are characterized by poor teaching, overcrowded classrooms, and lack of competent faculty and absence of infrastructure. To some extent disparities in educational attainments are related to caste and social groups, but they are also strongly related to other indicators such as income, gender, region, and place of residence. It is a scarcity issue. The problem will not go away just because we refuse to acknowledge its existence. Our

university systems are also characterized by cheap politicking, debilitating texture of partisanship and allurements of power. For a start, political interference in the appointments, corruption in the administration, purchase procedures and contracts, must be dealt with harshly.

Uniformity and centralization are both arch enemies of creativity and excellence. Teaching and learning can yield results only when teachers decide what is to be taught and the pupil is evaluated on the basis of his performance in relation to what has been taught. We have created a system in which there is a dissonance between what is mentioned in the syllabus and what is actually taught in the classes on the one hand, and the basis on which students are finally evaluated, on the other. Added to this is the fact that while there is an explosion of knowledge taking place every second, syllabi, even in the best of our universities, take years and even decades to change. To top it all, now we have created a system in which there is no scope for diversity, experimentation and innovation. We have become victims of centralization, uniformity and bureaucratization. We have created complex politico-bureaucratic system which seems to grind on and on without any purpose. The crisis of economy also gets translated into crisis of scientific education. Most of funding and regulatory bodies in higher education tend to be too political and bureaucratic. They also have become victims of standardization and uniformity with the result that the funds are distributed not in terms of qual-

ity but in term of the very fact that the university is enlisted. The greatest damage that the administrative and bureaucratic set-up has inflicted is that it has degraded teaching faculty to the point where they are unable to recognize quality anymore.

Obviously there is a crisis of confidence in science education at secondary and tertiary level and therefore government must convince that a sound B.Sc. course will necessarily result in immediate and gainful employment. And for this confidence building our education system must have two tiers: first for undergraduate training in science for a very large number of students provided with decent employment opportunities. And second tier for competent research oriented true talents that meet global standards. We have to move away from a centralized system to a decentralized one. Each university should become self-governing, autonomous and with the authority to seek its own funding. The government should involve itself less in the day-to-day affairs of universities and colleges. It should restrict itself to broad policy making and proper facilitation for implementation. The university system should be re-established as primary agency of knowledge creation and dissemination where all fundamental research and teaching is carried out. Also University systems should audit themselves for duplication of efforts, wasteful expenditure, little quality output and lack of accountability in scientific research. □

(Prof. Department of Environmental
Science, Sarguja University,
Ambikapur, Chhattishgarh)



मासूमों के भविष्य और अभिभावकों की दिक्कतों से बेपरवाह ये संस्थान शिक्षा का जिस तरह धड़ल्ले से बाजारीकरण कर रहे हैं, वह भारतीय शिक्षा के भविष्य के लिए बेहद घातक परिणाम ला सकता है। नर्सरी क्लास में बच्चों के दाखिले को लेकर प्वाइंट सिस्टम में अलग-अलग विद्यालय अलग-अलग मानकों के आधार पर भेदभावपूर्ण रवैया अपनाते रहे हैं। यह भी शिक्षा प्रणाली के लिए चिंताजनक है। प्वाइंट सिस्टम को अभिभावक के पद, आय आदि के अनुमानित आंकलन के आधार पर आवंटित करना किसी भी दृष्टि से उचित और न्यायसंगत नहीं है। हालांकि शिक्षा निदेशालय द्वारा हर विद्यालय को अपना दाखिला मानक बनाने की छूट जरूर दी गई है, लेकिन इस छूट का यह मतलब नहीं होना चाहिए कि प्वाइंट सिस्टम में ही पद, आय आदि के आधार पर बच्चों के साथ भेदभाव किया जाए।

दाखिले के पेंच में उलझती प्राथमिक शिक्षा

□ शिवानंद द्विवेदी

बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के लिए नए सत्र की दाखिले की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। शिक्षा के व्यवसायीकरण के आज के दौर में छोटे बच्चों की प्राथमिक शिक्षा का समुचित इंतजाम अभिभावकों के लिए किसी चुनौती से कम नहीं है। इस संदर्भ में मुश्किलें और ज्यादा इसलिए हो जाती हैं क्योंकि दुरावस्था के शिकार सरकारी शिक्षण संस्थानों से अभिभावकों का मोह बहुत पहले भंग हो चुका है परिणामतः अधिकांश मध्यमवर्गीय अभिभावक निजी शिक्षण संस्थानों की ओर रुख कर चुके हैं। बदहाल सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के कारण अब जब निजी शिक्षण संस्थानों में दाखिले के सिवा अभिभावकों के पास कोई और चारा नहीं दिख रहा है, वहीं निजी शिक्षण संस्थान दाखिले से लेकर पढ़ाई तक मनमाना रुख अख्तियार करते नजर आ रहे हैं।

निजी संस्थानों की मनमानी का आलम यह है कि अभिभावकों के लिए नर्सरी क्लास में बच्चों का दाखिला करा पाना मील का पत्थर साबित हो रहा है। निजी शिक्षण संस्थानों की मनमानी और अभिभावकों की परेशानी के

परिणामस्वरूप ही हर साल नर्सरी दाखिले से सम्बंधित कोई न कोई मामला न्यायालय के पास पहुंच जाता है। लॉटरी सिस्टम से बाहरी बच्चों के दाखिले आदि के मामलों को लेकर जहां प्राथमिक शिक्षण संस्थानों में असमंजस की स्थिति बनी है, वहीं फीस वृद्धि को लेकर अभिभावक कई बार सड़क से अदालत तक विरोध जाहिर कर चुके हैं। फिलहाल दिल्ली के स्कूलों में नर्सरी में प्रवेश की प्रक्रिया फिर अधर में लटकती नजर आ रही है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस मामले में कोई टोस निर्णय न देने की वजह से कई स्कूलों ने दाखिले की प्रक्रिया शुरू नहीं की है। हालांकि सुप्रीम कोर्ट की अगली सुनवाई पांच जनवरी के बाद होनी है, और उसके बाद ही स्थिति साफ होने की गुंजाइश बन सकती है। इसके अलावा भी अगर नर्सरी दाखिले की प्रक्रियाओं पर गौर करें तो तमाम ऐसी खामियां नजर आयेंगी जो प्राथमिक शिक्षा के लिहाज से बेहद चिंताजनक हैं। नर्सरी क्लास में दाखिले को लेकर 1999 में शिक्षा निदेशालय द्वारा जारी सर्कुलर को ताक पर रखकर निजी संस्थानों द्वारा जिस तरह मनमाने नियमों के तहत दाखिला दिया जाता है, वह बच्चों के साथ-साथ अभिभावकों के लिए भी परेशानी का सबब बना हुआ है। प्रॉस्पेक्टस





शुल्क, अधिकतम आयु सीमा, अभिभावक की आय, विद्यालय से बच्चे के आवास की दूरी जैसे बिंदुओं पर शिक्षा निदेशालय द्वारा तय किए गए मानकों एवं निर्देशों को निजी संस्थान दशकों से धता बताकर अपने मुनाफे के हिसाब से नियम बनाते आ रहे हैं।

मासूमों के भविष्य और अभिभावकों की दिक्कतों से बेपरवाह ये संस्थान शिक्षा का जिस तरह धड़ल्ले से बाजारीकरण कर रहे हैं, वह भारतीय शिक्षा के भविष्य के लिए बेहद घातक परिणाम ला सकता है। नर्सरी क्लास में बच्चों के दाखिले को लेकर प्वाइंट सिस्टम में अलग-अलग विद्यालय अलग-अलग मानकों के आधार पर भेदभावपूर्ण रवैया अपनाते रहे हैं। यह भी शिक्षा प्रणाली के लिए चिंताजनक है। प्वाइंट सिस्टम को अभिभावक के पद, आय आदि के अनुमानित आंकलन के आधार पर आवंटित करना किसी भी दृष्टि से उचित और न्यायसंगत नहीं है। हालांकि शिक्षा निदेशालय द्वारा हर विद्यालय को अपना दाखिला मानक बनाने की छूट जरूर दी गई है, लेकिन इस छूट का यह मतलब नहीं होना चाहिए कि प्वाइंट सिस्टम में ही पद, आय आदि के आधार पर बच्चों के साथ भेदभाव किया जाए। इस संदर्भ में शिक्षा निदेशालय को चाहिए कि वह निजी संस्थानों

को दी गई इस छूट में थोड़ी सख्ती लाकर इसके दायरों को और स्पष्ट करे, जिससे निजी संस्थान दाखिले की मूल प्रक्रिया में ज्यादा मनमानी कर पाने के लिए स्वतंत्र न हो सकें। इस संदर्भ में हमें इस बात को समझना होगा कि शिक्षा हमारे समाज की जरूरत है। इसे महज एक बच्चे की निजी जरूरत समझना हमारे वर्तमान समाज एवं व्यवस्था की सबसे बड़ी भूल साबित होगा।

लिहाजा, प्रत्येक बच्चे को प्राथमिक स्तर पर शिक्षित बनाने का दायित्व भी इन संस्थानों का है। दाखिले की प्रक्रिया में अभिभावकों की शैक्षिक योग्यता को आधारभूत मानक बनाना भी किसी नजरिये से शिक्षा के मूल सिद्धांतों के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है। अभिभावक के साक्षात्कार एवं योग्यता के आधार पर दाखिले को लेकर सुप्रीम कोर्ट के सख्त रुख के बावजूद व्यवहार में कोई खास परिवर्तन नहीं नजर आता। यह कुतर्क किसी भी नजरिये से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि बेहतर शिक्षा पर उसी बच्चे का अधिकार है, जिसके अभिभावक पूर्णतया शिक्षित एवं संपन्न हों। निजी संस्थानों का शिक्षा के प्रति रवैया बेहद अताकिर्क एवं व्यापारोन्मुख है और उनसे किसी भी प्रकार की ऐसी अपेक्षा नहीं रखी

जा सकती, जिससे हमारी शिक्षा की बुनियाद मजबूत हो सके।

शिक्षा के नाम पर मुनाफे का बाजार खड़ा करते ये निजी शिक्षण संस्थान शिक्षा के प्रति अपनी कोई जवाबदेही जाहिर करते नहीं दिखाते हैं। शिक्षा के बिगड़ते स्वरूप के लिए सरकार भी कम जिम्मेदार नहीं है। एक तरफ जहां शिक्षा के अधिकार कानून के तहत हर नौनिहाल को शिक्षा मुहैया कराने का लक्ष्य रखा गया, वहीं इनको प्राप्त करने संबंधी कोई ठोस नीति नहीं बनाई गई। अगर नीति बनाने में थोड़ा-बहुत काम हुआ भी तो उसे अमल में नहीं लाया जा सका। हालांकि दाखिले में निजी संस्थानों के मनमाने रवैये पर आ रही शिकायतों के आधार पर शिक्षा निदेशालय ने कुछ मानक जरूर तय किए हैं, लेकिन वास्तविक तौर पर इसे समस्या का समाधान नहीं कहा जा सकता। इसमें दो राय नहीं कि तमाम निर्देशों के बावजूद निजी संस्थानों की मनमानी चलती रहेगी और मजबूर अभिभावक निजी संस्थानों का दबाव को झेलने को मजबूर होते रहेंगे। बहरहाल, सवाल वहीं का वहीं है कि क्या शिक्षा को लेकर कोई और विकल्प हो सकता है या दाखिले के नाम पर अभिभावक, नौनिहाल और समाज यों ही ठगे जाते रहेंगे? शर्तों की बुनियाद पर शिक्षा बाँटना शिक्षा के अधिकार का मजाक उड़ाने जैसा ही है और यह मजाक धड़ल्ले से उड़या जा रहा है। सच पूछें तो प्राथमिक शिक्षा के प्रति सरकारी उदासीनता के परिणामस्वरूप ही निजी संस्थान मनमानी कर रहे हैं वरना शिक्षा मुहैया कराना तो राज्य का दायित्व है। बड़ा सवाल है कि अगर निजी संस्थान बेहतर शिक्षा के संसाधन मुहैया कराकर लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं तो फिर सरकारी शिक्षण संस्थान भला क्यों बदहाली की स्थिति में हैं? सरकार उनको क्यों नहीं दुरुस्त कर रही है? आखिर इस देश के गरीब बच्चे कहां पढ़ेंगे? □

संस्कृत विरोधी मानसिकता

□ बलबीर पूंज



संस्कृत का विरोध करने वाले बुद्धिजीवियों के अनुसार संस्कृत पूजापाठ की भाषा है और आज के आधुनिक युग में इसके ज्ञान का कोई औचित्य नहीं है। इनका यह भी तर्क है कि जर्मनी का वैश्विक बाजार में महत्व अधिक है। विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी 12.55 प्रतिशत, जो भारत, नेपाल, फिजी, मॉरीशस के लोग बोलते हैं। लेकिन देश में कथित संभ्रांतवादियों का एक तबका है, जो हिंदी को लेकर हीनभावना रखता है। अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या विश्व में 5.43 प्रतिशत ही है। विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में जर्मन 11वें स्थान पर है, लेकिन कुलीन कहने वाले इसे इस देश की संस्कृति की वाहक संस्कृत से अधिक वरीयता दे रहे हैं। वास्तव में ऐसे लोग मैकाले-मार्क्स के मानसपुत्र हैं।

केंद्रीय विद्यालयों में तीसरी भाषा के रूप में जर्मन की जगह संस्कृत को स्थाने देने के सरकारी निर्णय पर आपत्ति करनेवाले कौन हैं? इसी बिरादरी को केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री का ज्योतिषी से मिलना नागवार गुजरा है। उनका तर्क है कि शिक्षामंत्री के नाते उन्हें अंधविश्वास व अवैज्ञानिक मान्यताओं को बढ़ावा नहीं देना चाहिए। ज्योतिष में विश्वास या शादी-विवाह में कुंडली मिलाना निजी आस्था का मामला है और उसमें किसी अन्य का हस्तक्षेप समझ से परे है। भगवान को किसी ने नहीं देखा तो क्या आस्तिकों व देवालियों को प्रतिबंधित कर दिया जाए?

संस्कृत का विरोध करने वाले बुद्धिजीवियों के अनुसार संस्कृत पूजापाठ की भाषा है और आज के आधुनिक युग में इसके ज्ञान का कोई औचित्य नहीं है। इनका यह भी तर्क है कि जर्मनी का वैश्विक बाजार व महत्व अधिक है। यह ठीक है कि वैश्विक बाजार में आज संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का वर्चस्व है, लेकिन विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं की क्या स्थिति है? दुनिया में सबसे अधिक लोग मंडारिन भाषा का उपयोग करते हैं, जो चीन, ताइवान, सिंगापुर, मलेशिया आदि में रहते हैं। इसके बाद विश्व में सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा हिंदी का प्रतिशत 12.55 है, जो भारत, नेपाल, फिजी, मॉरीशस के लोग बोलते हैं। लेकिन देश में कथित संभ्रांतवादियों का एक तबका है, जो हिंदी को लेकर हीनभावना रखता है। अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या विश्व में 5.43 प्रतिशत ही है। विश्व में बोली जानेवाली भाषाओं में जर्मन 11वें स्थान पर है, लेकिन कुलीन कहने वाले इसे इस देश की संस्कृति की वाहक संस्कृत से अधिक वरीयता दे रहे हैं। वास्तव में ऐसे लोग मैकाले-मार्क्स के मानसपुत्र हैं। इस देश की शिक्षा पद्धति मैकाले की नीति पर चल रही है, जिसने अंग्रेजी माध्यम को ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों को साधने के लिए लागू किया था। उसकी योजना अंग्रेजी भाषा और रहन-सहन से युक्त भारतीय वर्ग का सृजन करना था, जो स्थानीय स्तर पर ब्रितानियों का पक्षधर बनता। आजादी के बाद शिक्षा पद्धति को बदलना चाहिए था, लेकिन नेहरू जो खुद को मन से आखिरी अंग्रेजी मानते थे, उन्होंने इसकी आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने शीर्ष शिक्षण नियामक संस्थानों को ऐसे हाथों में सौंपा, जो इस धरा की संस्कृति से विरक्त थे। देश की समृद्ध संस्कृति, आचार-विचार, जीवन मूल्य व दर्शन हमारे ग्रंथों में समाहित हैं, जिन्हें हमारे ऋषि-महर्षियों-मनीषियों ने संस्कृत भाषा में संकलित कर रखा है। उस समृद्ध विरासत को समझने व उसे अगली पीढ़ी तक प्रवाहित करने के लिए संस्कृत एक



माध्यम है। विडंबना यह है कि भारतीय इतिहास लिखने वाले अधिकांश यूरोपीय विद्वान औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त थे और उनकी यह मानसिकता समझी जा सकती है। लेकिन कालांतर में भारतीय इतिहासकारों का भी एक वर्ग ऐसा उभरा, जो यूरोपीय अवधारणाओं की ही पुष्टि में संलग्न रहा। आर्यों का मूल स्थान यूरोप बताने वाले विदेशी लेखकों की मानसिकता औपनिवेशिक अभियान का मुहर लगाने का सूचक है। लेकिन इसकी सबसे अधिक वकालत करने वाले इस धरा की समृद्ध संस्कृति व विरासत से कटे-छंटे कम्युनिस्ट इतिहासकार हैं। इसीलिए भारत को आर्यों का मूलस्थान सिद्ध करने वाले इतिहासकार भी कम्युनिस्टों के निशाने पर रहे हैं। इस वर्ग के इतिहासकार आर्य- आक्रमण के मिथक को औपनिवेशिक योजना का हिस्सा मानते हैं। इनका मानना है कि ऋग्वेद का रचनाकाल कम से कम 5000 ई.पू. है। उनकी यह भी मान्यता है कि सनातन संस्कृति की निरंतरता भारत में ऋग्वेद काल से चलती आ रही है।

केवल भारतीय ही नहीं, बल्कि जो विदेशी इतिहासकार भारतीय संस्कृति को सम्मान देते हैं, वे भी कम्युनिस्टों की आलोचना के शिकार हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. डेविड फ़ाली ने अपने शोध से यह स्पष्ट किया है कि ईसा पूर्व सात हजार साल से भी बहुत पहले भारत में सभ्यता का विकास हो चुका था। उनके अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्य, साहित्य या

पुरातत्व के उत्खननों से यह कहीं साबित नहीं होता कि आर्य बाहरी आक्रमणकारी थे। डॉ. फ़ाली ने इस बात पर दुख व्यक्त किया है कि भारत में आज भी यही पढ़ाया जा रहा है कि आर्यों ने बाहर से आकर द्रविड़ों को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। कम्युनिस्ट यह भली-भांति जानते हैं कि करीब 95 प्रतिशत भारतीय अपने इतिहास की जानकारी स्कूली जीवन में ही पाते हैं। किशोरवय के मस्तिष्क में जैसी छाप छोड़ दी जाए, वह चिरकाल तक बनी रहती है। कम्युनिस्टों ने अपने झूठ को स्थापित करने के लिए यही आसान रणनीति बनाई है। कम्युनिस्ट इतिहासकारों द्वारा खोजी गई 13000 पुरानी बस्तियों में से लगभग 900 आबादियां भारत की प्राचीन नदी सरस्वती और इसकी सहायक नदियों के तट पर बसी थीं। वैज्ञानिक अनुसंधान से सरस्वती नदी के अस्तित्व व उसके प्रवाह मार्ग का भी पता चल चुका है, लेकिन कम्युनिस्ट इतिहासकार पूर्वाग्रह ग्रस्त होने के कारण सरस्वती नदी को भारतीय इतिहास का एक मिथक मात्र मानते हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि इसे मान्यता देने से वैदिक युग की परंपराओं का अविरल प्रवाह वर्तमान दौर तक स्वतः ही चला आएगा, जिसे वे नकारते आए हैं। भारत की महान वैदिक सभ्यता को यथोचित सम्मान देने के बजाए वैदिक संस्कृति का उल्लेख गंवार व अशिक्षित कबीलाई समाज के रूप में किया गया है। सिंधु घाटी सभ्यता, ऋग्वेद व ऋग्वैदिक काल, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक आदि आर्य ग्रंथ, प्राचीन

नदियां और इस देश की सनातनी संस्कृति, पूजा-पद्धतियों पर कम्युनिस्ट इतिहासकार पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के उत्खनन से मिले शिवलिंग, पशुपति महादेव के सील, योगी-योगिनियों की मूर्ति आदि को कम्युनिस्ट इतिहासकार नकारते हैं। हड़प्पा संस्कृति में मौजूद लिंग पूजन की पद्धति आज शिवलिंग पूजन के रूप में बहुसंख्य भारतीय समाज में मौजूद है। वस्तुतः संस्कृति का यही अक्षुण्य प्रवाह कम्युनिस्टों को सबसे ज्यादा अखरता है। योगी की प्रतिमा को कम्युनिस्ट इतिहासकार मेसोपोटामिया की संस्कृति से जोड़कर देखते हैं। ऋषियों व तपस्वियों की अविरल परंपरा भारत में सिंधु सभ्यता के समय से ही है, इसे स्वीकारने से उनके आर्य आक्रमण के सिद्धांत को झटका लगने का अंदेशा है, इसलिए योगियों की मूर्ति को दूसरी सभ्यता से जोड़ने की कोशिश की जाती है। हमारे आर्य ग्रंथों में उन तथ्यों का भी समावेश है, जिन पर आधुनिक विज्ञान, आज शोध कर रहा है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, चरक, सुश्रुत, ऐसे ही कुछ नाम हैं। अपने देश के गौरव बिंदुओं और उसकी समृद्ध अक्षुण्य परंपरा को नकार कर कोई भी देश स्वाभिमान के साथ खड़ा नहीं रह सकता। क्या कारण है कि जहां विश्व की कई सभ्यताएं काल के गाल में समा गईं, वहीं सनातन सभ्यता चिरंतन व नित नूतन है? इस थाती को भावी पीढ़ी तक पहुंचाने का काम संस्कृत ही कर सकती है। □
(लेखक भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं)

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, गुजरात की राज्य स्तरीय बैठक आयोजित

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ गुजरात की प्रदेश कार्यकारिणी एवं जिला अध्यक्ष, जिला मंत्रियों की बैठक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री माननीय महेन्द्र कपूर के मुख्य आतिथ्य एवं राष्ट्रीय सचिव श्री मोहन पुरोहित की उपस्थिति में डॉ. हेडगेवार भवन, कर्णावती (अहमदाबाद) में 25 दिसम्बर, 2014 को गुजरात के प्रदेश अध्यक्ष श्री घनश्याम भाई पटेल की अध्यक्षता में आयोजित हुई।

राष्ट्रीय संगठन मंत्री माननीय महेन्द्र कपूर ने अपने उद्बोधन में बताया कि कार्यकर्ता

संगठन का आधार स्तम्भ है वह नियमित प्रवास करके, शिक्षकों की समस्याओं का निराकरण कर अपने संगठन को और अधिक ऊँचाई प्रदान करे। शिक्षक का सम्मान बढ़े इसलिए शैक्षिक महासंघ अब प्रति वर्ष प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के श्रेष्ठतम चयनित 3 शिक्षकों को शिक्षा क्षेत्र का सबसे बड़ा शिक्षा भूषण पुरस्कार प्रदान करेगा जिसमें प्रत्येक शिक्षक को 1 लाख रुपये नकद एवं स्मृति चिन्ह तथा सम्मान पत्र प्रदान करेगा। शैक्षिक महासंघ के निर्धारित कार्यक्रम के तहत स्वामी

विवेकानन्द जयंती से सुभाष चन्द्र बोस जयंती के मध्य अधिकतम शिक्षकों के साथ (कर्तव्य बोध संकल्प दिवस) कार्यक्रम प्रत्येक तहसील में आयोजित करने का आह्वान किया।

प्रदेश महामंत्री श्री भीखा भाई पटेल ने समस्याओं का संकलन किया। अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री घनश्याम भाई पटेल ने संगठन की रीति-नीति पर चलने का आह्वान किया। बैठक में प्रदेश संगठन मंत्री श्री रतु भाई गोल सहित प्रदेश कार्यकारिणी एवं जिलाध्यक्ष, जिला मंत्री उपस्थित रहे।



संस्कृत की इसी विलक्षणता को रेखांकित करते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में कहा गया है कि केंद्र हिन्दी के प्रसार को बढ़ावा देने की जरूरत पड़ने पर हिन्दी शब्द-कोष में संस्कृत शब्दों को शामिल करेगा। वैसे भी हमारी बोलियों और अन्य राज्य प्रमुख व क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द- भंडार में ज्यादातर शब्द संस्कृत से ही लिए गए हैं। संस्कृत की इसी संस्कारजन्य व्यापकता को स्वीकारते हुए महात्मा गांधी ने 20 मार्च 1927 को हरिद्वार की राष्ट्रीय शिक्षा परिषद में बोलते हुए कहा था, 'संस्कृत का अध्ययन करना प्रत्येक भारतीय छात्र का दायित्व है। अपने पूर्वजों को जानने के लिए उन्हें संस्कृत सीखनी चाहिए।' लेकिन यह विंडबना ही है कि कालांतर में संस्कृत शैक्षिक पाठ्यक्रमों से विलोपित की जाती रही। मैकाले ने गुलाम भारत में भाषा नीति की जो बुनियाद रखी, उसमें मट्टु डालने की बजाय, स्वतंत्रता के छह दशक बाद भी हम खाद-पानी डालने में लगे हैं।

संस्कृत की टूटी कड़ियां जोड़ने की कोशिश

□ प्रमोद भार्गव

केंद्रीय विद्यालयों में आठवीं तक संस्कृत पढ़ाए जाने के संबंध में केंद्र सरकार ने अपना रुख साफ कर दिया है। सर्वोच्च न्यायालय में शपथ पत्र प्रस्तुत कर सरकार ने कहा है कि छठी से आठवीं तक जर्मन की जगह संस्कृत पढ़ाई जाएगी। संस्कृत राष्ट्रहित से जुड़ा मुद्दा है, इसलिए संस्कृति की सुरक्षा व संरक्षण की पैरोकार मौजूदा सरकार से यही अपेक्षा थी। 2011 में संप्रग सरकार ने संस्कृत की जगह जर्मन को तीसरी भाषा का दर्जा दिया था। जबकि जर्मन पढ़ाया जाना संविधान का उल्लंघन था। हालांकि इस मुद्दे की जांच कराई जाएगी। मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी ने संस्कृत को अनिवार्य करते हुए कहा था कि यह राष्ट्रहित में लिया गया निर्णय है। हालांकि वे राष्ट्रहित के इतने महत्वपूर्ण फैसले पर पलट भी गई थीं, जिसकी शायद जरूरत नहीं थी? हमें इस मामले में जर्मनी के विदेश मंत्री फैंक वाल्टर स्टेनमीयर और चांसलर एंजेला मर्केल से सीख लेनी चाहिए कि वह अपनी भाषा के प्रति कितने सचेत हैं कि उन्होंने दिल्ली में पैरवी करके संस्कृत की अनिवार्यता समाप्त करा देने की पहल कर डाली थी। पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह संस्कृत को भारत की 'आत्मा' जरूर बताते रहे हैं लेकिन संविधान में उल्लिखित त्रिभाषा फार्मुला की अवहेलना करके केंद्रीय विद्यालयों के पाठ्यक्रम से संस्कृत हटाने का

काम उन्हीं के कार्यकाल में हुआ। जबकि संस्कृत भारतीय मानव विकास क्रम से जुड़ी भाषा है। यह भाषा देश की अन्य भाषाओं का उद्गम स्रोत है। छत्र संस्कृत से जुड़ते तो देश की सनातन परंपराओं से तो परिचित होते ही, प्रकृति से भी उनका नाता जुड़ता।

याद रहे कि संविधान निर्माताओं द्वारा यह फार्मुला उस समय भारत की विविधता को ध्यान में रखकर राष्ट्र व चरित्र निर्माण की चिंताओं के परिप्रेक्ष्य में लिया गया था। संस्कृत दुनिया की प्राचीनतम भाषा होने के साथ, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। यदि हम संस्कृत की टूटी कड़ियों को जोड़ने और बहुविषयक पहल को आगे बढ़ाते हैं तो इससे वर्तमान ज्ञान-प्रणाली और भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाने की अद्भुत क्षमता विकसित होगी। क्योंकि संस्कृत को लेकर यह गलत धारणा बन गई है कि इसे केवल धर्म, उपासना और रीतियों से जोड़कर देखा जाना चाहिए? जबकि यह धारणा कौटिल्य, चरक, चार्वाक, आर्यभट्ट, सुश्रुत, वात्स्यायन, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, पंतजलि और अन्य कवियों, चिंतकों व लेखकों के मर्म को नजर अंदाज करने के अलावा इसकी मूल उपादेयता के साथ अन्याय है। किंतु विंडबना है कि संस्कृत के महत्व को संस्कृत से जुड़े पर्वों के अवसर पर औपचारिक पुनरावृत्ति कर कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है। यही कारण है कि संस्कृत की भाषाई सामर्थ्य, बहुविषयक देने और वैज्ञानिक उपलब्धियों



को बेहतर व सिलसिलेवार ढंग से रेखांकित किए जाने की स्वतंत्र भारत में शुरुआत ही नहीं हो पायी। इसमें दो राय नहीं कि संस्कृत जीवंत भाषा है। संस्कृत में यदि प्रवाह और ग्राह्यता न होती तो देश के करोड़ों निरक्षर लोग जो विविध भाषी व बोलियों से आते हैं, रामायण, महाभारत, गीता और संस्कृत के अनेक नीति ग्रंथों के रहस्यों को कैसे जानते? उनके मर्म से आत्मसात कैसे होते? देश के बहुसंख्यक लोगों की दिनचर्या आज भी इन्हीं ग्रंथों के दृष्टान्त से अनुशासित होती है। सामाजिक लोकाचार में सही-गलत क्या है, इस निर्णय में इन्हीं ग्रंथों के उदाहरण पथ-प्रदर्शक बनते हैं। न्यायाधीश भी इन्हीं के उदाहरण फैसलों में उल्लेखित करते हैं।

संस्कृत की इसी विलक्षणता को रेखांकित करते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में कहा गया है कि केंद्र हिन्दी के प्रसार को बढ़ावा देने की जरूरत पड़ने पर हिन्दी शब्द-कोष में संस्कृत शब्दों को शामिल करेगा। वैसे भी हमारी बोलियों और अन्य राज्य प्रमुख व क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द-भंडार में ज्यादातर शब्द संस्कृत से ही लिए गए हैं। संस्कृत की इसी संस्कारजन्य व्यापकता को स्वीकारते हुए महात्मा गांधी ने 20 मार्च 1927 को हरिद्वार की राष्ट्रीय शिक्षा परिषद में बोलते हुए कहा था, 'संस्कृत का अध्ययन करना प्रत्येक भारतीय छात्र का दायित्व है। अपने पूर्वजों को जानने के लिए उन्हें संस्कृत सीखनी चाहिए।' लेकिन यह विंडबना ही है कि कालांतर में संस्कृत शैक्षिक पाठ्यक्रमों से विलोपित की जाती रही। मैकाले ने गुलाम भारत में भाषा नीति की जो बुनियाद रखी, उसमें मट्टा डालने की बजाय, स्वतंत्रता के छह दशक बाद भी हम खाद-पानी डालने में लगे हैं। साथ ही हमने यह भ्रम भी पाल लिया है कि विज्ञान और तकनीक में ही नहीं, ज्ञानार्जन के अन्य क्षेत्रों में जो भी काम हो रहा है, वह पश्चिम में ही हो रहा है। भारत और अन्य पूर्वी देश तो नितांत पिछड़े हैं। इसी धारणा के चलते न केवल भारतीय भाषाओं की हालत नाजुक हुई, बल्कि समग्र राष्ट्रीय चेतना भी कमजोर पड़ी है। लिहाजा राष्ट्रीय और राष्ट्रबोध से जुड़े प्रतीक चिह्नों पर न केवल सवाल उठाए जा रहे हैं,

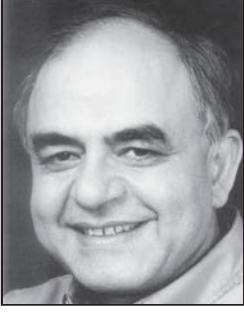
अपितु उन्हें नकारा भी जा रहा है। नकारात्मकता के बीज-तत्व शिक्षा-नीति में डालने का यह काम मैकाले द्वारा पहले ही हो चुका था इसीलिए उसने अंग्रेजी पढ़ने पर उतना जोर नहीं दिया, जितना संस्कृत और भारतीय भाषाओं के महत्व को अस्वीकारने पर दिया। मैकाले मिनिट्स में लिखा है, 'यदि आप भारत में ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण करना चाहते हैं जो न केवल अपनी संप्रभुता और सांस्कृतिक विरासत से पृथक हो, बल्कि उसके प्रति घृणा के भाव भी पनप आए, इस मकसद के लिए जरूरी है कि उसे संस्कृत व अन्य भारतीय भाषा में अध्यापन कराया जाए। क्योंकि संस्कृत ऐसी भाषा है, जो एक देशवासी को अपनी सनातन परंपरा और राष्ट्र-बोध के प्रति चैतन्य बनाए रखती है। नतीजतन उसे अंग्रेजी शिक्षा देनी चाहिए और इस भाषा के माध्यम से पढ़े युवक को ही ब्रिटिश सत्ता की प्रशासनिक व्यवस्था में भागीदार बनाना चाहिए।'

इस एजेंडे पर फिर्गी हुकूमत का ठप्पा लगने के बाद मैकाले और उनके सहयोगियों ने कुटिलता भरी चतुराई से भारत की ज्ञान-परंपरा पर हमला तेज कर दिया। संस्कृत व सांस्कृतिक धरोहरें आमजन के लिए महत्वहीन हो जाएं, इस दृष्टि से संपूर्ण प्राचीन संस्कृत साहित्य को आध्यात्मिक व कर्मकांडी साहित्य की संज्ञा देकर, ज्ञानिविज्ञान के मंत्रों को पूजा की वस्तु बना देने की रणनीति चल दी। इन धूर्त उपक्रमों को हमने अंग्रेजों की कृतज्ञ उपलब्धि मान लिया। जबकि हमारे उपनिषद्, ब्रह्मांड के रहस्यों को जानने की जिज्ञासाएं हैं। रामायण, महाभारत ऐतिहासिक कालखंडों की सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक व युद्ध-कौशल के वस्तुपरक चित्रण हैं। गीता नैतिक आत्मबल का सटीक दर्शन है। अठारह पुराण ऐतिहासिक क्रम में शासकों के समयकाल की गाथाएं हैं। मनुस्मृति, विदुर-नीति और कौटिल्य का अर्थशास्त्र वर्तमान शासन-व्यवस्थाओं के संविधान हैं। वात्स्यायन का कामसूत्र अर्थ और काम विषयक अद्वितीय व सर्वथा मौलिक ग्रंथ है। चार्वाक के दर्शन ने ऐसा प्रत्यक्षवाद दिया, जो समस्त ईश्वरीय और कर्मकांडी अवधारणाओं को नकारता है। चार्वाक ने ही कहा था कि सुख के लिए ऋण

लेकर भी घी पीना पड़े तो पीना चाहिए। यही आधुनिक भौतिकता है, जिसका मौजूदा आर्थिक दर्शन पश्चिम के ख्यात अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने रचा और जिसका परचम पूरी दुनिया में नव-उदारवाद के बहाने फहराया जा रहा है।

संस्कृत के माध्यम से आमजन में आत्मसात होने वाले संस्कारों के ये ऐसे उपाय थे, जिन्हें आचरण की थाती बनाकर बहुसंख्यक लोगों ने प्राकृतिक संपदा के असीमित उपभोग और माया के मोह से शताब्दियों से दूरी बनाए रखकर प्रकृति की देनों को प्राणी जगत के लिए अक्षुण्य बनाए रखा। बुद्ध, महावीर और गांधी ने इसी संस्कृत के भाषायी संस्कार से असंचयी भाव का दर्शन अंगीकार किया। इन सब पुख्ता आधारों के विश्लेषण से मैकाले ने समझ लिया था कि संस्कृत के भारतीय परिवेश में ज्ञान-परंपरा से गहरे सरोकार हैं, क्योंकि वह ज्ञान-मीमांसा से जुड़ी भाषा है। मानव समुदाय को संस्कारित करने में भाषा की क्या भूमिका हो सकती है, इसे बीसवीं सदी के विख्यात दार्शनिक विटगेंस्टाइन ने बेहतर ढंग से परिभाषित किया है, 'भाषा हम बनाते हैं और भाषा को हम बदलते भी हैं। किंतु इतना ही सच नहीं है, भाषा भी हमें बनाती और बदलती है।' संस्कृत व हिन्दी समेत सभी देशज भाषाओं पर सवार होकर, अंग्रेजी आज हमें निरंतर बदलने में लगी है। क्योंकि अंग्रेजी योग्यता साबित करने का प्रतिमान तो बनी ही है, शासन-प्रशासन में रौब-रुतबे का पद हासिल करने में भी मददगार साबित हो रही है। अंग्रेजी के इस वर्चस्व को तोड़े बिना न संस्कृत की टूटी हुई कड़ियों को जोड़ा जा सकता है और न इसकी बहुविषयक पहल को समझा व अपनाया जा सकता है। अनेक विदेशी विचार और आक्रमण हमसे टकराए। हमने उनसे सामना किया और अपनी भाषाओं, संस्कृति व सभ्यता को बचाए रखा, लेकिन अंग्रेजी दासता के शिकंजे से छुटकारे के उपाय हम आजादी के 67 साल बाद भी नहीं खोज पा रहे हैं। तय है, संस्कृत के माध्यम से ही हम सही अर्थों में व्यापक राष्ट्रहित साधने में सफल हो सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य है कि संस्कृत को पाठ्यक्रमों में बनाए रखना मुश्किल हो रहा है। □

(स्वतंत्र/स्तम्भ लेखक)



Too many believe that education is only about 'making a living' when, in fact, it is also about 'making a life.' Yes, later education should prepare one for a career, but early education should instill the self-confidence to think for ourselves, to imagine and dream about something we absolutely must do in life. A proper teaching of Sanskrit can help in fostering a sense of self-assuredness and humanity, much in the way that reading Latin and Greek did for generations of Europeans when they searched for their roots in classical Rome and Greece.

Sanskrit, taught well, can be as rewarding as economics

□ Gurucharan Das

There was a time when I used to believe like Diogenes the Cynic that I was a citizen of the world, and I used to strut about feeling that one blade of grass is much like another.

Now I feel that each blade has its unique spot on the earth from where it draws its life and strength. So is a man rooted to a land from where he derives his life and his faith. Discovering one's past helps to nourish those roots, instilling a quiet self-confidence as one travels through life. Losing that memory risks losing a sense of the self.

With this conviction I decided to read Sanskrit a few years ago. I knew a little from college but now I wanted to read the Mahabharata. Mine was not a religious or political project but a literary one. But I did not want to escape to 'the wonder that was India'. I wanted to approach the text with full consciousness of the present, making it relevant to my life. I searched for a pundit or a shastri but none shared my desire to 'interrogate' the text so that it would speak to me. Thus, I ended up at the

University of Chicago.

I had to go abroad to study Sanskrit because it is too often a soul-killing experience in India. Although we have dozens of Sanskrit university departments, our better students do not become Sanskrit teachers. Partly it is middle-class insecurities over jobs, but Sanskrit is not taught with an open, enquiring, analytical mind. According to the renowned Sanskritist, Sheldon Pollock, India had at Independence a wealth of world-class scholars such as Hiriyanna, Kane, Radhakrishnan, Sukthankar, and more. Today we have none.

The current controversy about teaching Sanskrit in our schools is not the debate we should be having. The primary purpose of education is not to teach a language or pump facts into us but to foster our ability to think — to question, interpret and develop our cognitive capabilities. A second reason is to inspire and instill passion. Only a passionate person achieves anything in life and realizes the full human potential. And this needs passionate teachers, which is at the heart of the problem.

Too many believe that education



is only about 'making a living' when, in fact, it is also about 'making a life.' Yes, later education should prepare one for a career, but early education should instill the self-confidence to think for ourselves, to imagine and dream about something we absolutely must do in life. A proper teaching of Sanskrit can help in fostering a sense of self-assuredness and humanity, much in the way that reading Latin and Greek did for generations of Europeans when they searched for their roots in classical Rome and Greece.

This is the answer to the bright young person who asks, 'Why should I invest in learning a difficult language like Sanskrit when I could enhance my life chances by studying economics or

commerce?' Sanskrit can, in fact, boost one's life chances. A rigorous training in Panini's grammar rules can reward us with the ability to formulate and express ideas that are uncommon in our languages of everyday life. Its literature opens up 'another human consciousness and another way to be human', according to Pollock.

Teaching Sanskrit under the 'three-language formula' has failed because of poor teachers and curriculum. Mythological comic books such as Amar Chitra Katha and TV cartoons in Sanskrit with captions might at least catch the imagination of children. But the debate is also about choice. Those who would make teaching Sanskrit compulsory in school are wrong. We should foster excellence in Sanskrit teach-

ing rather than shove it down children's throats.

The lack of civility in the present debate is only matched by ignorance and zealotry on both sides. The Hindu right makes grandiose claims about airplanes and stem cell research in ancient India and this undermines the real achievements of Sanskrit. The anti-brahmin, Marxist, post-colonial attack reduces the genuine achievements of Orientalist scholars to 'false consciousness'. Those who defend Sanskrit lack the open-mindedness that led, ironically, to the great burst of creative works by their ancestors. In the end, the present controversy might be a good thing if it helps to foster excellence in teaching Sanskrit in India. □



स्वामी विवेकानन्द,
नेताजी अुभाष चन्द्र बोस्र जयन्ती
एवं गणतंत्र दिवस्र की
हार्दिक शुभकामनाएँ



सरिता महाविद्यालय बाड़ी, धौलपुर एम.एस. रावत आई.टी.आई.

महाराज बाग, माता के मंदिर के पास, सरमथुरा रोड, बाड़ी, जिला धौलपुर (राज.)

निदेशक - साहब सिंह

मो. 9887634837, 9468887510

उच्च शिक्षा की ढलान

□ शंकर शरण



स्मरण रहे कि आदमी रोजगार इसलिए करता है कि वह सुखमय जीवन जी सके। मगर वह जीवन क्या है, यह ज्ञान उसे आज शिक्षा में नहीं मिल रहा। साइंस-टेक्नॉलॉजी, वाणिज्य-व्यापार को मुख्य मानने वाले दर्शन का यह दिवालियापन ही है कि धर्म-अधर्म की उपेक्षा से बढ़ते-बढ़ते अंततः उसका पैमाना मनुष्य भी नहीं रह गया है। केवल वस्तुओं का अंधाधुंध निर्माण और वित्तीय लाभ ही कसौटी हो गई है। स्वयं मनुष्यता किसी गिनती में नहीं! इसलिए पहले हमें अपनी शिक्षा-दृष्टि पर ही पुनर्विचार कर लेना चाहिए।

एक उच्चस्तरीय समिति दिल्ली विश्वविद्यालय के कार्यचालन पर विचार कर रही है। पर केवल एक विश्वविद्यालय के लिए क्यों? देश के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थिति पर विचार होता, जिससे मिले निष्कर्ष उनकी आम दशा-दिशा सुधारने के काम आ सकते। डॉ राधाकृष्णन की अध्यक्षता वाले 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' (1948) की रिपोर्ट को आधार मानें, तो हमारी चिंताओं में यही बात खो गई है कि विश्वविद्यालय का अर्थ क्या है, उसे किसलिए बनाया गया था? यह वही आयोग था, जिसकी अनुशंसाओं पर स्वतंत्र भारत के विश्वविद्यालयों की आधारशिला बनाई गई और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बना।

'हायर एजुकेशन सेक्टर', 'फैकल्टी शॉर्टेज', जैसी शब्दावली का चलन संकेत है कि विश्वविद्यालय किसी वाणिज्यिक, यांत्रिक गतिविधि चलाना जैसा मान लिया गया है। इस दोषपूर्ण स्थिति को शिक्षा की सामान्य परिभाषा से मिलाकर भी देख सकते हैं। किसी सभ्यता में शिक्षा को रोजगार, उत्पादन आदि से जोड़ कर नहीं देखा गया। महान दार्शनिक रूसो ने कहा था, 'मेरे लिए इसका कोई महत्व नहीं कि मेरा

विद्यार्थी सैन्य सेवा में जाएगा, या चर्च, या कानून के क्षेत्र में। इससे पहले कि उसके माता-पिता उसके लिए कार्य-क्षेत्र तय करें, प्रकृति ने उसे पहले मनुष्य होने के लिए कहा है अतः जब वह मुझसे शिक्षा प्राप्त करके जाएगा तो वह न मजिस्ट्रेट होगा न सिपाही न पादरी; वह एक मनुष्य होगा।' हमारे कवि-दार्शनिक अज्ञेय ने भी लिखा था, 'हमारे हाथ मुक्त हों, हमारा हृदय मुक्त हो, हमारी बुद्धि मुक्त हो: इससे बड़ी सफलता न हमारी शिक्षा हमें दे सकती है, न हम अपनी शिक्षा को दे सकते हैं।' शिक्षा की सभी परिभाषाएं इसी तरह की मिलेंगी।

इसलिए हमें शिक्षा का अर्थ बदलने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन अगर ऐसा ही हो गया है तो इसलिए कि शिक्षा पर पूर्णतः भौतिकवादी दृष्टि छा गई है। यह मनुष्य को केवल शरीर समझती है। तभी लक्ष्य मात्र रोजगार हो गया और शुद्ध ज्ञान-चिंतन निरर्थक-सा मान लिया गया। लेकिन इसी कारण हम कई सामाजिक व्याधियों के सामने निरुत्तर भी हैं।

भगवद्गीता में कहा है, 'इंद्रियाणि पराण्याहः इंद्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।' अर्थात् मनुष्य के शरीर से परे, अर्थात् उच्च, उसकी इंद्रियां हैं। इंद्रियों के परे मन है। मन के परे बुद्धि है और बुद्धि के भी परे आत्मा है। आइन्सटॉन जैसे दार्शनिक-वैज्ञानिक ने भी ऐसी



ही भावना व्यक्त की थी। इसलिए शिक्षा को मनुष्य के संपूर्ण आयाम को ध्यान में रखना चाहिए। लेकिन यह आयाम हमारी संपूर्ण शिक्षा में पूरी तरह खो गया है।

यह कहना भूख को अध्यात्म से संतुष्ट करने की बात नहीं। वरन भूख के निदान के बाद आत्मिक, मानसिक, आध्यात्मिक आहार भी देने की बात है, जिसके अभाव में शिक्षा अधूरी रह जाती है। स्वामी विवेकानंद ने इसी पर कहा था, 'पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयों में से एक यह भी है कि वहां हृदय की परवाह न करते हुए केवल बौद्धिक शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा मनुष्य को दस गुना स्वार्थी बना देती है।' यह स्थिति किसी के लिए अच्छी नहीं।

फिर, सामाजिक ज्ञान और प्राकृतिक ज्ञान (साइंस) में एक मौलिक भेद भी है। प्राकृतिक-प्रायोगिक ज्ञान पूरी दुनिया में एक-से हो सकते हैं। लेकिन समाज-ज्ञान हर देश में अपना ही हो सकता है। तभी वह सार्थक, रचनात्मक होगा। ऐसा न होने के कारण ही हमारे विश्वविद्यालयों में पश्चिमी समाज विज्ञान एक बोझ है, जो युवाओं को मौलिक विचारों के लिए प्रेरित नहीं कर पाता।

अच्छा जीवन क्या है? अच्छी राज्य-व्यवस्था कौन-सी है? क्या ईश्वर का अस्तित्व है? संसार में मनुष्य का क्या काम है? क्या इस संसार से परे भी कोई संसार या अस्तित्व है? कहीं उचित और अनुचित का निर्णय करने का आधार क्या होना चाहिए? क्या कानून बनाना पर्याप्त है? लोक-हित, राज-हित और व्यक्ति-हित में क्या संबंध है? ऐसे कई मूल प्रश्न मानवता के साथ सदैव रहे हैं और इसीलिए शास्त्रीय ग्रंथों को सामान्य शिक्षा से कभी विलग नहीं करना चाहिए। उनमें इन्हीं बिंदुओं पर सुचिंतित ज्ञान भरा पड़ा है। नए युग में नई स्थितियों का सामना करने के लिए भी उससे संपृक्त होना जरूरी है। हमारी शिक्षा इसके विपरीत हो गई है, इस पर विचार करना चाहिए।

क्योंकि दुनिया जितनी बदलती जाती है, उतनी ही वह वैसी की वैसी भी रहती है। जीवन-मृत्यु, आशा-आकांक्षा, लोभ-स्वार्थपरता, पररोपकार-त्याग,

लूटपाट, गरीबी-अमीरी, अहंकार, मोह, अराजकता, सुव्यवस्था, आदि अनेक परिघटनाएं हजारों साल से मानवता के साथ हैं। नीति-अनीति, ऊंच-नीच, धर्म-अधर्म, प्रेम-वैराग्य, आदि भी मनुष्य के साथ उसी तरह हैं। इसीलिए महान पुस्तकें, चाहे वह वेदव्यास की हों या टॉल्स्टॉय की, कभी पुरानी नहीं पड़तीं। उनके अध्ययन करने में रुचि रखने वालों के लिए ही विश्वविद्यालय नामक स्थान होता है। उन्हीं से वह सार्थक होता है। विज्ञान के विभागों की प्रयोगशालाएं उनके बाद ही हैं।

विश्वविद्यालय सर्वोच्च ज्ञान-केंद्र होते हैं। इस आदर्श को भटकाते हुए मात्र कागजी डिग्री वितरण, संभावित नौकरी के लिए युवा प्रमाणित करना, हॉस्टल जैसी सुविधाओं को कोचिंग धर्मशालाओं में बदल देना, या राजनीतिक प्रशिक्षण-प्रचार का अड्डा बनाना- इन सबके लिए विश्वविद्यालय नहीं होता। न होना चाहिए। यह विचार न करने का अर्थ होगा कि विकृति को मान्यता दे दी गई।

स्मरण रहे कि आदमी रोजगार इसलिए करता है कि वह सुखमय जीवन जी सके। मगर वह जीवन क्या है, यह ज्ञान उसे आज शिक्षा में नहीं मिल रहा। साइंस-टेक्नॉलॉजी, वाणिज्य-व्यापार को मुख्य मानने वाले दर्शन का यह दिवालियापन ही है कि धर्म-अधर्म की उपेक्षा से बढ़ते-बढ़ते अंततः उसका पैमाना मनुष्य भी नहीं रह गया है। केवल वस्तुओं का अंधाधुंध निर्माण और वित्तीय लाभ ही कसौटी हो गई है। स्वयं मनुष्यता किसी गिनती में नहीं! इसलिए पहले हमें अपनी शिक्षा-दृष्टि पर ही पुनर्विचार कर लेना चाहिए।

शिक्षा पर अधिकतर चर्चा प्रायः आंकड़ों से संबंधित रहती है। कई बिंदुओं पर यह उपयुक्त है, लेकिन यही चर्चा का आदि और अंत नहीं होना चाहिए। क्या समाज की सांस्कृतिक, भाषाई उन्नति-अवनति आदि कुछ नहीं? इतने हाईस्कूल पास, ग्रेजुएट या पीएचडी कहने का क्या अर्थ है, यदि ग्रेजुएट की वास्तविक मूल्यवत्ता आंकलन से बाहर हो? मात्रा से लिप्त, गुण से निर्लिप्त, यह दृष्टि

छल-पूर्ण है। लेकिन इसी से आज शिक्षा का मूल्यांकन हो रहा है। इसे सुधारना चाहिए।

विश्वविद्यालय को मात्र रोजगारोपयोगी तैयारी करने-कराने के केंद्रों से अलग करना भी विचारणीय है। श्री अरविंद ने कहा था: 'किसी भी महान देश का बौद्धिक पतन सदैव तीन गुणों के क्षरण से आरंभ होता है।' उन्होंने ये तीन गुण बताए थे: विवेकपूर्ण विचार करने की क्षमता, तुलना और विभेद करने की क्षमता, तथा अभिव्यक्ति की क्षमता। ये क्षमताएं भाषा, महान साहित्य, संसार भर के शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन से ही आती हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में उन ग्रंथों के नाम तक लुप्त-से हो गए हैं, अध्ययन-मनन तो दूर रहा!

भारत के लिए तो उक्त चेतावनी और भी सदा स्मरणीय है। क्योंकि पिछले हजार वर्ष से बर्बर और धूर्त लोग आकर यहां हम पर अधिकार जमाते रहे हैं।

ऐसी समस्याओं की विवेचना, और निकलने वाले निष्कर्षों का अध्ययन कहां, किनके द्वारा किया जाएगा? याद रहे, सोने की चिड़िया ही लूटी गई थी! यानी उद्योग, तकनीक, धन-वैभव से परिपूर्ण भारत ही पराधीन हुआ था। किनके हाथों, कैसे? ऐसे प्रश्नों को केवल उत्कृष्ट सामाजिक चिंतन, दर्शन और साहित्य ही समझता और हल करता है। उसी पर सभ्यता टिकती, सुरक्षित रहती है।

इसलिए हमें चिंतक, द्रष्टा भी चाहिए। जबकि भारतीय युवा मुख्यतः तकनीकी, प्रशासनिक कार्य करने वाले, प्रबंधक आदि भर बन रहे हैं। हमारे विश्वविद्यालय अधिकांशतः रोजगार की ओर बढ़ने के प्रारंभिक प्रमाण-पत्र भर दे रहे हैं। चारों तरफ विश्वविद्यालय के नाम पर केवल पोलिटेकनिक या कोचिंग जैसे केंद्र बन, बढ़ रहे हैं। लेकिन सामाजिक समस्याओं की समझ और समाधान के लिए और गहरे प्रशिक्षण, बल्कि आत्म-प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

यहां शिकागो विश्वविद्यालय के चांसलर रहे रॉबर्ट हचिन्स की टिप्पणी स्मरणीय है: 'मैंने कई खगोलशास्त्रियों का

नाम सुना है, जो सोलह वर्ष की आयु से पहले ही अंतरराष्ट्रीय विशिष्ट पत्रिकाओं में शोध-पत्र लिखते रहे हैं। पर मैंने किसी ऐसे बच्चे के बारे में नहीं सुना जो सामाजिक संगठन और मनुष्य के भवितव्य के बारे में कोई उपयोगी बात कह सका हो।' यह मानवीय प्रश्नों की अधिक जटिलता का संकेत है। लेकिन हमारे देश में ऐसे प्रश्न ही शिक्षा और शोध की दृष्टि से पूर्णतः उपेक्षित छूट गए हैं।

इसका कारण शिक्षा में अंगरेजी का वर्चस्व और राजनीतिक विचारधाराओं का दबदबा भी है। उच्च-स्तरीय विमर्श में अंगरेजी ने आम जन-गण को काट कर अलग कर दिया है। बुद्धिजीवी वर्ग अपनी ही दुनिया में रहता है और आपसी चर्चा से आगे नहीं जाता। भारतीय भाषाओं में उच्च-शिक्षा के लिए उपयोगी पुस्तकें होना-न होना महत्वहीन हो गया। जैसे-तैसे कुछ नोट्स, हेल्प-बुक जैसी परीक्षोपयोगी चीजें बाजार में ला देने का चलन बन गया है। विश्वविद्यालय इन सब पर क्या कर रहे हैं?

इसी बीच, समाज विज्ञान और मानवीकी विषयों को राजनीति के औजार के रूप में इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति पनपी और बढ़ती गई। इसका दुष्प्रभाव आम शिक्षण-चिंतन पर भी पड़ा। राजनीतिक मतवादों का वर्चस्व शिक्षा के बाजारीकरण का ही दूसरा पहलू है। विद्यार्थियों के स्वविवेक और चेतना को जाग्रत, विकसित करने के बदले बने-बनाए निष्कर्ष भरने और उन्हें दुहराने वाला प्रचारक भर बनाना यही चीज है।

दिल्ली के एक केंद्रीय विश्वविद्यालय के 'एमए राजनीति' के पाठ्यक्रम और सूची में अठारह बार कार्ल मार्क्स का नाम आया है। जबकि विश्व के सबसे बड़े समकालीन विद्वानों एर्रो, लिपसेट और हंटिंग्टन का नाम तक उसमें नहीं! मतवादीकरण के ऐसे उदाहरण सामाजिक विज्ञान और मानवीकी के पाठ्यक्रम में भरे मिलेंगे। इस घोर राजनीतिकरण से मुक्ति पाना प्राथमिक चिंता होनी चाहिए। □

(स्वतंत्र/ स्तम्भ लेखक)

उच्च शिक्षा की तस्वीर

हमारे देश के उच्च शिक्षा संस्थानों को दुनिया के दो सौ स्तरीय संस्थानों में जगह नहीं मिल पाती, तो उसकी वजहें जाहिर हैं। विडंबना है कि तस्वीर और उसके कारण साफ होने के बावजूद समस्या के हल की दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं होता। देश के केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की कमी की समस्या लंबे समय से बनी हुई है। मगर हर साल स्थिति और बदतर होते जाने के बीच इससे निपटना सरकार को जरूरी नहीं लगता। नतीजतन विश्वविद्यालयों में न सिर्फ शिक्षा की गुणवत्ता पर असर पड़ रहा है, बल्कि इससे शिक्षकों की कमी एक चिंताजनक स्थिति बनी हुई है। इस मसले पर सोमवार को राज्यसभा में पूछे गए सवाल पर एक बार फिर सरकार के पास यही जवाब था कि देश भर में केंद्रीय विश्वविद्यालय अध्यापकों की भारी कमी से जूझ रहे हैं। यह सिर्फ अंदाजा लगाया जा सकता है कि अगर उनतालीस केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के चालीस प्रतिशत पद खाली हैं, तो वहां शैक्षणिक गतिविधियों और उनकी गुणवत्ता की क्या हालत होगी। सबसे ऊंचे दरजे की तकनीकी शिक्षा मुहैया कराने वाले संस्थानों में चालीस से पचास प्रतिशत तक शिक्षकों के पद रिक्त हैं, जिनमें बड़ी तादाद अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षित सीटों की है। कानपुर स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी जैसे कई संस्थानों में इसलिए भी खाली जगहों पर नियुक्तियां नहीं हो रही हैं कि वहां के अधिकारी शिक्षण की गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं करना चाहते। निश्चित रूप से यह अच्छी बात है और शायद इसी आधार पर यह दावा किया जाता है कि केंद्रीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाई-लिखाई का स्तर राज्यों के विश्वविद्यालयों से बेहतर है। लेकिन सवाल है कि कुल मिला कर शोध और शिक्षण का वह कौन-सा स्तर है और इस पेशे के प्रति आकर्षण की क्या स्थिति है कि हमारे बेहतर उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए उनकी कसौटी पर खरा उतरने वाले बेहतर शिक्षक नहीं मिल पा रहे हैं।

हालांकि शैक्षणिक या गैर-शैक्षणिक पदों पर नियुक्ति जैसे मामलों में विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता मिली हुई है। इसमें कुलपति को विशेष अधिकार हासिल है। लेकिन गुणवत्ता और कसौटी के अलावा जो सबसे बड़ी समस्या पेश की जाती है वह है धन का अभाव। इसमें काफी हद तक सच्चाई भी है। दरअसल, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालयों को इस तर्क पर तकनीकी पाठ्यक्रम शुरू करने की इजाजत दे रखी है कि वे अपने खर्च का कुछ हिस्सा खुद जुटाएं। लेकिन सवाल है कि क्या इस रास्ते होने वाली आमदनी से खाली पदों पर होने वाली नियुक्तियों का खर्च निकाला जा सकता है। यह बेवजह नहीं है कि प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों, खेल परिसरों आदि में सुविधाओं और संसाधनों के घोर अभाव से जूझते विश्वविद्यालयों की सबसे बड़ी समस्या आज शिक्षकों की कमी हो चुकी है, जिसके चलते शैक्षणिक सत्र समय पर पूरे नहीं हो पा रहे हैं। इन संस्थानों से निकलने वाले विद्यार्थियों के बीच विदेशों में प्रतिभा पलायन और शिक्षण को कैरियर के रूप में न चुनना शिक्षकों की कमी की एक वजह हो सकती है। लेकिन जब भी शिक्षकों की कमी के आंकड़े सामने आते हैं तो कहने को सरकार इस पर चिंता जताती है और तत्परता से विचार कर नए तरीके से समाधान खोजने और समस्या से निपटने का भरोसा देती है। पर जरूरत इस बात की है कि विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के पहलू को मजबूत बनाया जाए, ताकि संस्थानों को गुणवत्ता के तर्क के सहारे नियुक्तियों को टालने की जरूरत महसूस न हो।

नई पीढ़ी के सामने रामानुजन की प्रेरणा

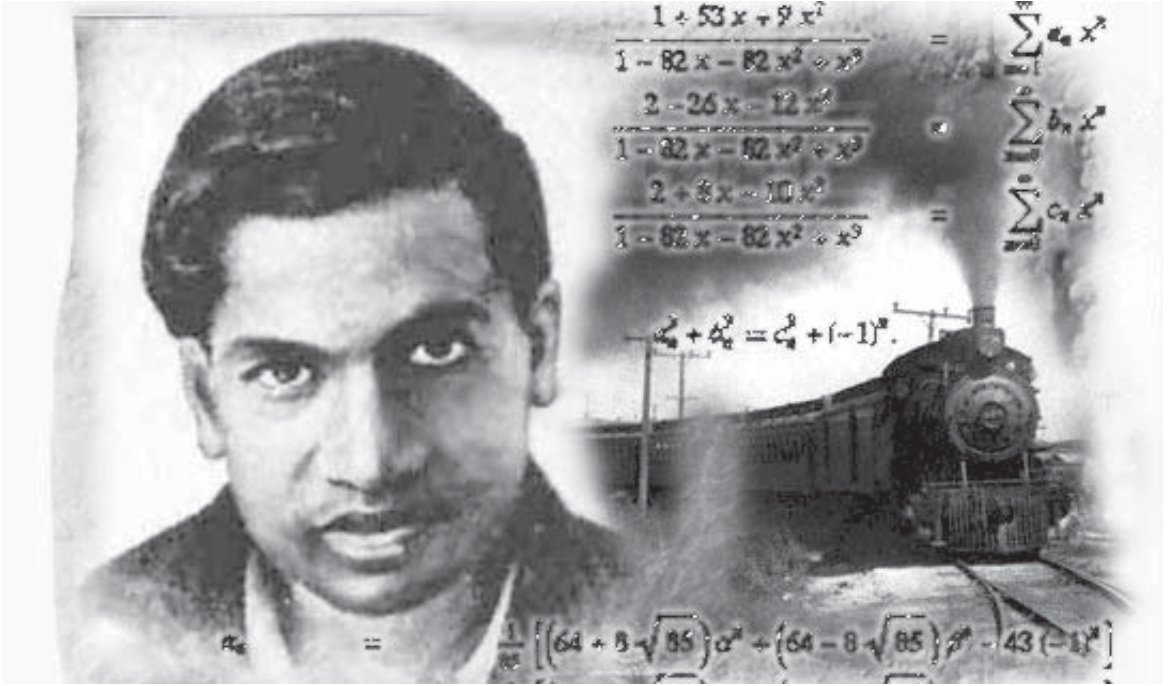
□ शशांक द्विवेदी



मौजूदा समय में विश्व स्तर पर गणित के मामलों में भारत काफी निचले पायदान पर पहुँच गया है। श्रीनिवास रामानुजन के जीवन चरित्र से हमारी शिक्षा व्यवस्था का खोखलापन भी उजागर होता है। 13 वर्ष की अल्पायु में रामानुजन ने अपनी गणितीय विश्लेषण की असाधारण प्रतिभा से अपने संपर्क के लोगों को चमत्कृत कर दिया, मगर भारतीय शिक्षा व्यवस्था ने उन्हें असफल घोषित कर बाहर का रास्ता दिखा दिया था। रामानुजन की पारिवारिक पृष्ठभूमि गणित की नहीं थी। परिवार में कोई उनका मददगार भी नहीं था। ऐसे में अपनी क्षमता को दुनिया के सामने लाने हेतु रामानुजन को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा था। वो डिग्री प्राप्त नहीं कर सके। लेकिन उनके कार्य और योग्यता को देखते हुए ब्रिटेन ने उन्हें बीए की मानद उपाधि दी और बाद में उन्हें पीएचडी की भी उपाधि दी। यहां पर एक सवाल उठता है कि क्या यह भारत में संभव नहीं था क्योंकि हमारी शिक्षा व्यवस्था ने तो रामानुजन को हर तरह से नकार ही दिया था।

आज पूरे विश्व में जब भी गणित की या गणित में योगदान की बात की जाती है तो श्रीनिवास रामानुजन का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। विश्व स्तर पर गणित के क्षेत्र में उनका योगदान अतुलनीय है। गरीबी, सीमित संसाधनों और सरकारी लालफीताशाही के बावजूद उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा से दुनिया को चमत्कृत कर दिया। उन्होंने गणित के क्षेत्र में जो कार्य किए हैं, वे देश के युवाओं के लिए सदा प्रेरणा के रूप में मौजूद रहेंगे। प्राचीन समय से भारत गणितज्ञों की सरजमीं रही है। भारत में आर्यभट्ट, भास्कर, भास्कर-द्वितीय और माधव सहित दुनिया के कई मशहूर गणितज्ञ पैदा हुए। 19वीं शताब्दी और उसके बाद के कालखंड में श्रीनिवास रामानुजन, चंद्रशेखर सुब्रमण्यम और हरीश चंद्र जैसे गणितज्ञ विश्व पटल पर उभरकर सामने आए। भारत के आर्यभट्ट ने ही दुनिया को दशमलव का महत्व समझाया, लेकिन मौजूदा समय में विश्व स्तर पर गणित के मामलों में भारत काफी निचले पायदान पर पहुँच गया है। श्रीनिवास रामानुजन के जीवन चरित्र से हमारी शिक्षा व्यवस्था का खोखलापन भी उजागर होता है। 13 वर्ष की अल्पायु में रामानुजन ने अपनी गणितीय विश्लेषण की असाधारण प्रतिभा से अपने संपर्क के लोगों को चमत्कृत कर दिया, मगर भारतीय शिक्षा व्यवस्था ने उन्हें असफल घोषित कर बाहर का रास्ता दिखा दिया था। रामानुजन की पारिवारिक पृष्ठभूमि गणित की नहीं थी। परिवार में कोई उनका मददगार भी नहीं था। ऐसे में अपनी क्षमता को दुनिया के सामने लाने हेतु रामानुजन को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा था। गणित के क्षेत्र में सितारे की तरह चमकने वाले श्रीनिवास रामानुजन का जन्म 22 दिसम्बर 1887 को तमिलनाडु के इरोड में हुआ था। वह पारंपरिक ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। सन् 1897 में रामानुजन ने प्राथमिक परीक्षा में जिले में अब्बल स्थान हासिल किया। इसके बाद अपर प्राइमरी की परीक्षा में अंकगणित में सर्वोच्च अंक प्राप्त

कर उन्होंने अपने अध्यापकों को चौंका दिया। सन् 1903 में रामानुजन ने दसवीं की परीक्षा पास की। इसी साल उन्होंने घन (क्यूब) और चतुर्घात समीकरण (बायाडरेटिक इक्वेशन) हल करने का सूत्र खोज निकाला। वह अपने समय का उपयोग गणित के जटिल प्रश्नों को हल करने में किया करते थे। समय के साथ-साथ रामानुजन का गणित के प्रति रुझान बढ़ता ही गया। फलस्वरूप 12वीं की परीक्षा में गणित को छोड़कर वह अन्य सभी विषयों में अनुत्तीर्ण हो गए। दिसम्बर 1906 में रामानुजन ने स्वतंत्र परीक्षार्थी के रूप में 12वीं की परीक्षा पास करने की कोशिश की, लेकिन वे कामयाब न हो सके। इसके बाद रामानुजन ने पढ़ाई छोड़ दी। बिना डिग्री लिए ही रामानुजन को औपचारिक अध्ययन छोड़ना पड़ा। अपने अध्ययन के बल पर रामानुजन कभी भी डिग्री प्राप्त नहीं कर सके। लेकिन उनके कार्य और योग्यता को देखते हुए ब्रिटेन ने उन्हें बीए की मानद उपाधि दी और बाद में उन्हें पीएचडी की भी उपाधि दी। यहां पर एक सवाल उठता है कि क्या यह भारत में संभव नहीं था, क्यों हमारी शिक्षा व्यवस्था ने तो रामानुजन को हर तरह से नकार ही दिया था। वह तो सिर्फ अपनी विलक्षण प्रतिभा और प्रोफेसर हार्डी जैसे मित्रों की वजह से ही विश्व पटल पर आ पाए। सन् 1911 में रामानुजन का 'सम प्रोपर्टीज ऑफ बारनॉलीज नंबर्स' शीर्षक से प्रथम शोध पत्र जनरल ऑफ मैथमेटिक्स सोसायटी में प्रकाशित हुआ। मद्रास के इंजीनियरिंग कॉलेज के प्रोफेसर सीएलओ ग्रिफिक्स ने रामानुजन के शोध पत्र गणित विद्वानों को भिजवाए। प्रो. ग्रिफिक्स की सलाह पर रामानुजन ने 1913 में तत्कालीन विख्यात गणितज्ञ एवं ट्रिनिटी कॉलेज के फैलो प्रोफेसर हार्डी को पत्र लिखा, जिसमें 120 प्रमेय और सूत्र शामिल थे। प्रोफेसर हार्डी इस पत्र से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रामानुजन को कैंब्रिज आने का न्योता दे डाला। मार्च 1914 को जब रामानुजन लंदन पहुंचे तो प्रोफेसर नाबिला ने उनका स्वागत किया। जल्द ही उन्हें ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश मिल गया। यहां वे प्रोफेसर लिटिलवुड के



साथ मिलकर शोध कार्य में लग गए। रामानुजन ने इंग्लैंड में रहकर बहुत थोड़े ही समय में अपनी धाक जमा दी। उन्होंने प्रोफेसर हार्डी के निर्देशन में अध्ययन करते हुए गणित संबंधी अनेक स्थापनाएं दीं, जो 1914 से 1916 के मध्य विभिन्न शोध पत्रों में प्रकाशित हुईं। उनके इन शोध कार्य से सारे संसार में हलचल मच गई। उनकी योग्यता को दृष्टिगत रखते हुए 28 फरवरी 1918 को रॉयल सोसायटी ने उन्हें अपना सदस्य बना कर सम्मानित किया। इस घटना के कुछ ही समय बाद ट्रिनिटी कॉलेज ने भी उन्हें अपना फैलो चुनकर सम्मानित किया। 'हाइली कंपोजिट नंबर' शीर्षक के अनुसंधान कार्य के आधार पर 1916 में रामानुजन को बीए की उपाधि प्रदान की गई। प्रोफेसर हार्डी की इस सदशयता ने रामानुजन के जीवन की एक बड़ी कमी को दूर कर दिया। यह उपाधि वह चाबी थी जिसने आगे की सफलता के सभी द्वार खोल दिए थे। बाद में उसी उपाधि को पीएचडी में बदल दिया गया था। रामानुजन के शोध प्रबंध का सार जर्नल ऑफ लंदन मेथेमेटिकल सोसाइटी में 50 पृष्ठ के विस्तार

से छपा था। प्रोफेसर हार्डी के अनुसार तब तक किसी अन्य का ऐसा विद्वतापूर्ण पत्र उस जर्नल में नहीं छपा था। एक तो रामानुजन का दुबला-पतला शरीर, दूसरे लंदन का बेहद ठंडा मौसम, उस पर खानपान की उचित व्यवस्था का अभाव। ऐसे में रामानुजन को क्षय रोग ने घेर लिया। उस समय तक क्षय रोग का कारगर इलाज उपलब्ध नहीं था। सिर्फ आराम और समुचित डॉक्टरों देखरेख ही उन्हें बचा सकती थी। लेकिन रामानुजन की गणित की दीवानगी ने उन्हें चैन से नहीं बैठने दिया। इससे उनकी तबियत बिगड़ती गई और 27 फरवरी 1919 को उन्हें भारत लौटना पड़ा। तब तक रामानुजन का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था। डॉक्टरों ने उन्हें पूर्ण आराम की सलाह दी। लेकिन रामानुजन भला गणित को छोड़ कर कैसे रह पाते!

नतीजतन उनकी बीमारी बढ़ती चली गई और 26 अप्रैल 1920 को कावेरी नदी के तट पर स्थित कोडुमंडी गांव में 33 वर्ष की अल्पायु में उनका निधन हो गया। रामानुजन सन् 1903 से 1914 के बीच, कैंब्रिज जाने से पहले, गणित के 3542 प्रमेय

लिख चुके थे। उनकी तमाम नोटबुकों को बाद में 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च बांबे' (मुंबई) ने प्रकाशित किया। इन नोट्स पर इल्लिनाय विश्वविद्यालय के गणितज्ञ प्रोफेसर बर्ना ने 20 वर्षों तक शोध किया और अपने शोध पत्र को पाँच खंडों में प्रकाशित कराया। रामानुजन की गणितीय प्रतिभा का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनके निधन के लगभग 93 वर्ष व्यतीत होने जाने के बाद भी उनकी बहुत-सी प्रमेय अनसुलझी बनी हुई हैं। वर्तमान में उच्चस्तरीय गणित के अध्ययन में छात्र बहुत कम रुचि दिखाते हैं, जबकि आज देश को बड़ी संख्या में गणितज्ञों की जरूरत है। हमें विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक और मूल्यांकन पद्धति में सुधार लाना होगा, मेधावी छात्रों को प्रोत्साहित करना होगा, उन्हें संसाधन उपलब्ध कराने होंगे ताकि उन्हें रामानुजन जैसी कठिनाइयों का सामना न करना पड़े और वे शोध में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें। देश एक बार फिर से गणित के क्षेत्र में दुनिया का सिरमौर बने, यही रामानुजन को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। □



□ Pratap Bhanu Mehta

One legacy of Jawaharlal Nehru that has been systematically dismantled over the years: his instinctive understanding of higher education.

The financial outlays to higher education have increased. The clamour for more higher education has been growing. But we have failed to create the capillaries that can sustain and nourish a vibrant higher education system. It is a sector peculiarly resistant to reform. This has one reason, which Nehru recognised well. Education, more than any other sector, depends on the accumulation of a lot of soft skills and tacit understanding, which if lost, are hard to recreate. This is reflected, for instance, in his deep concern about the quality of academic leadership in education. It is a concern we barely seem to understand. Nehru's weakness on primary education was, in retrospect, a great failing. But he was more clear-headed on higher education. He realised

that independence in thinking and technical capacity was a necessary correlate of political independence. While it was necessary to be open to ideas from everywhere, it was also important to develop an independent locus of thought. Above all, this has meant that we have an elite that is not content with the idea that much of our research and higher education can be outsourced. But, though we do not say so, implicitly, we are quite content with outsourcing higher education to the United States. We cannot "make in India" if we don't "think in India".

Nehru realised that higher education is also the main instrument of a new form of sociability. It should be a site where group identities can be transcended. Just read his speech from the Aligarh Muslim University convocation, in which he warns against the dangers of aligning reason and identity. But sectarian universities have become even more ghettoised. Nehru also realised that an indigenously educated middle class that has not seceded is necessary

But higher education is going to be hard to reform. As a culture, we have lost a sense of the appropriate relationship between political structures and education institutions. It is hard to get across the idea that the political class ought not to be micromanaging higher education. The idea that universities should be at the beck and call of ministers, on everything from canteens to exams, curriculum to degree structures, is preposterous. Independent regulatory bodies, like the UGC, which commanded enormous respect from Nehru, have become worse than bureaucratic conduits for state power. These days, it is near impossible to even explain what a different culture of the relationship between state and academia would look like: those habits that Nehru cherished have long been lost.



for an enlightened vanguard. He was perhaps overly optimistic about how higher education could produce it, but the aspiration was not off the mark.

But higher education is going to be hard to reform. As a culture, we have lost a sense of the appropriate relationship between political structures and education institutions. It is hard to get across the idea that the political class ought not to be micromanaging higher education. The idea that universities should be at the beck and call of ministers, on everything from canteens to exams, curriculum to degree structures, is preposterous. Independent regulatory bodies, like the UGC, which commanded enormous respect from Nehru, have become worse than bureaucratic conduits for state power. These days, it is near impossible to even explain what a different culture of the relationship between state and academia would look like: those habits that Nehru cherished have long been lost.

This malaise has afflicted all political parties. There is nothing more than bad faith in the Left and Congress's crocodile tears over the decimation of higher education. It is an interesting fact that in almost all other sectors, we can point to examples of innovation in the states, dynamic chief ministers who have set something right. But except some marginal differences in the nature of private education acts, it is hard to think of any chief minister who has left a lasting impression on higher education.

A few exceptions apart, academic cultures in a large number of universities have deteriorated to the

point where it is hard to see how they can be retrieved. Politicians have often stepped into the self-abdication of academics who have let them in, without resistance, for their own partisan squabbles. The social credibility of the academic profession, by which Nehru set so much store, is in serious jeopardy.

Credibility is earned; it can never be commanded. The balance of respect has tilted in favour of the state. One of the saddest facts about higher education is that tolerance for a diversity of institutional forms, each with its own identity and strengths, is low among academics. Even academics proposing reforms often make the mistake of thinking that all institutions must correspond to the same template.

The Nehruvian sensibility we have lost is the idea that higher education is something more than instrumental. The instrumental character of education is manifested in two ways. First, the effective control of education has gone into the hands of those who come to the sector for extraneous reasons: the nature of regulation ensures that, with a few exceptions, there is adverse selection in the kinds of entrepreneurs that enter higher education. This private lobby, which has benefited from the decimation of public institutions and a low-quality equilibrium, has done much to ensure that few meaningful reforms take place. A genuine not-for-profit sector has an enormous role to play in higher education. And some interesting experiments are now underway. But the maturation of this sector is a long way off. There is as yet no happy alternative between bureaucratic logic on

the one hand and commercial logic on the other.

Second, there is, rightly, a new emphasis on skilling and employment-oriented courses. But it is an intellectual mistake to think that even these can be divorced from a larger culture of intellectualism. Nehru was himself clear that a culture that thinks of education only instrumentally would not be well educated in the long run. There is an odd assumption many economists make: that manufacturing requires a low-level of skills, that a mere tinkering at the edges of skills will somehow produce an employable workforce. Even manufacturing has to now be nested in a far greater diversity of cognitive attributes.

In the Nehruvian imagination, there was nothing embarrassing in thinking about universities as places for the cultivation of intellect and humanity. The idea was that the university was a space where faculty was trying to retrieve a modicum of intellectual order in a chaotic universe. This consideration, above all else, defined a university's mission and identity. There are glimmers of hope. India now seems to be experiencing a minor turnaround in science and technology. But this turnaround is very fragile and will not be sustained without a drastic reorientation in the approach to research. There is also now a yearning for new forms of education. But this has not yet found adequate institutional articulation. But the Nehruvian ideal of the public university as a space defined by the highest intellectual values lies in ruins. It will be a tall order to recover it. □

शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद से घट रही है छात्रों की संख्या

मानव संसाधन विकास मंत्रालय इस बात को लेकर उलझन में है कि अप्रैल 2010 में राइट टु एजुकेशन (आर टी ई) एक्ट के लागू होने के बाद सरकारी तथा अनुदानित निजी विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की कुल संख्या में कमी आई है।

मंत्रालय चिन्तित इसलिए है कि आर टी ई अधिनियम का एकमात्र उद्देश्य निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना था, जिससे शत-प्रतिशत बच्चे विद्यालयों में नामांकित हो सकें, किन्तु इसका प्रभाव गलत हुआ है क्योंकि नामांकन बढ़ने के बजाय कम हुआ है। देश के 13 लाख सरकारी तथा अनुदानित प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन का सरकारी आँकड़ा दर्शाता है कि इन विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या, जो 2010 में 13.34 करोड़ थी, कम होकर 2013-14 में 13.24 करोड़ रह गई तथा इस प्रकार इन विद्यालयों में 10 लाख विद्यार्थी कम हो गये। नामांकन बढ़ने के बजाय इन स्कूलों से बच्चों के दूर हो जाना लोगों के जीवन स्तर तथा इच्छाओं के ऊपर उठने का प्रतीक है। इन स्कूलों में केवल हिंदी तथा स्थानीय भाषाओं—मराठी, गुजराती बंगाली आदि में शिक्षा दी जाती है, जबकि माता-पिता अपने बच्चों को उन निजी विद्यालयों में भेज रहे हैं, जो अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा प्रदान करते हैं। यह जानकारी मंत्रालय को उसके द्वारा सभी राज्य सरकारों से मांगी गई जानकारी से प्राप्त हुई है। जनवरी में एक एन जी ओ—‘प्रथम’ की रिपोर्ट में भी यह बताया गया

था कि कई राज्यों में विद्यार्थी निजी विद्यालयों में जाते हैं, जबकि वहाँ सरकारी विद्यालय अच्छी-खासी स्थिति में हैं।

रिपोर्ट में कहा गया है कि 2013 में किया गया एक अध्ययन बताता है कि सरकारी विद्यालयों के मात्र 18.19 प्रतिशत बच्चे ‘घटाने’ के प्रश्न हल कर सके, जबकि निजी विद्यालयों के 44.6 प्रतिशत बच्चों ने ये सवाल हल कर दिये। यह एक ऐसा तथ्य है जिसके कारण माता-पिता अपने बच्चों को निजी विद्यालयों में भेज रहे हैं। मंत्रालय के सूत्रों ने कहा कि आर टी ई अधिनियम के लक्ष्य की पूर्ति के लिये शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थानीय भाषा के मामले में सरकारी तथा अनुदानित निजी विद्यालयों में छूट दी जा सकती है तथा इन्हें अंग्रेजी माध्यम में देने पर भी अनुदान दिया जा सकता है।

सूत्रों ने कहा कि मंत्रालय राज्य सरकारों को सुझाव देगा कि सरकारी तथा नगर पालिका के विद्यालयों को चलाने की अनुमति गैर सरकारी संगठनों तथा निजी संगठनों को दे दी जाये तथा उन्हें उनके द्वारा पढ़ाये जाने वाले बच्चों के लिये प्रति बच्चे के हिसाब से पैसा दिया जाये, जिनसे इन स्कूलों के स्तर में सुधार आ सके। कई राज्यों में सरकारी तथा अनुदानित विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या में गिरावट आने का कारण यह रहा है कि, खर्च में कटौती करने के लिये कम नामांकन वाले विद्यालयों का विलय अन्य विद्यालयों में करने की नई प्रवृत्ति शुरू हो गई है।

कर्नाटक तथा महाराष्ट्र में गत वर्ष में

करीब 20,000 प्राथमिक विद्यालयों का विलय किया जा चुका है तथा आने वाले दिनों में राजस्थान में 17000 प्राथमिक विद्यालयों के साथ भी ऐसा ही किये जाने की आशंका है। बहुत से विद्यालयों में शाम की पारी बंद कर दी गई है तथा उस पारी के बच्चों को दिन की पारी में समाहित कर दिया गया है। अगर एक या दो किमी की दूरी के अंतर्गत एक से अधिक प्राथमिक विद्यालय हैं, तो आर टी ई अधिनियम के निर्देश, कि प्रत्येक बस्ती के लिये एक किमी की दूरी के अंदर एक प्राथमिक विद्यालय होना चाहिये, की अवज्ञा करते हुए उनका विलय कर दिया गया है। इस विलय के लिये दिया गया तर्क यह है कि जिन विद्यालयों में शिक्षकों की कमी है, वहाँ विलय किये गये शिक्षकों का प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, विलय किये जाने के कारण बंद हो चुके विद्यालयों के भवनों का उपयोग कौशल-प्रशिक्षण, प्रौढ शिक्षा तथा सूचना कियोस्क जैसी अन्य गतिविधियों के लिये किया जा सकता है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय भी समझ नहीं पा रहा है कि अप्रैल 2010 में यह शिक्षा का अधिकार कानून लागू हुआ था तब से सरकारी व सरकारी अनुदान प्राप्त स्कूलों में नए प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या काफी गिर गई है।

एक एन जी ओ ‘प्रथम’ की रिपोर्ट में दावा किया गया है कि प्राइवेट स्कूलों के प्रति रुझान बढ़ा है क्योंकि यहाँ अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा मिलती है, जबकि सरकारी स्कूलों में हिन्दी में या स्थानीय भाषा में शिक्षा दी जाती है।

रूकटा राष्ट्रीय अलवर इकाई द्वारा व्याख्यान आयोजित सांस्कृतिक मूल्यों को युवा पीढ़ी तक पहुँचाएँ

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य प्रो. संतोष पाण्डेय ने कहा है कि भारतीय संस्कृति के पुरातन मूल्यों को युवा पीढ़ी तक पहुँचाए रखने में शिक्षक की भूमिका बढ़ गई है।

पाण्डेय राजकीय कला महाविद्यालय में रूकटा (राष्ट्रीय) की ओर से 12 दिसम्बर, 2014 को शाश्वत जीवन मूल्य विषय पर हुए व्याख्यान में मुख्य वक्ता के रूप में बोल रहे थे। प्रो. पाण्डेय ने कहा कि भारतीय पुरातन संस्कृति समृद्ध है जिसे युवा पीढ़ी तक पहुँचाने

का जिम्मा शिक्षक पर है। वर्तमान में युवा समाज में परिवर्तन लाने में अपनी भूमिका निभा सकता है जिसके लिए उसे प्रेरित करना होगा। उन्होंने कहा कि स्वच्छता, अनुशासन और भारतीय संस्कृति के मूल्यों का संदेश हर घर तक पहुँचाना होगा। समाज में बदलाव लाने का जिम्मा शिक्षकों पर है। इसके लिए युवाओं को साथ लेकर चलना होगा।

पाण्डेय ने कहा कि जिस प्रकार हम अपने घर में स्वच्छता रखते हैं, उसी प्रकार सार्वजनिक जीवन में हमें स्वच्छता का ध्यान

रखना चाहिए। पूरा विश्व भारतीय संस्कृति के आदर्श और मूल्यों का सम्मान करता है। ऐसे में हमें विदेशी संस्कृति का मोह त्याग कर अपनी संस्कृति को अपनाना चाहिए। इस अवसर पर रूकटा राष्ट्रीय के विभागाध्यक्ष डॉ. शशिकांत गुप्ता ने स्वागत भाषण किया। अध्यक्षता कला महाविद्यालय की प्राचार्य डॉ. यशोदा मीणा ने की। रूकटा राष्ट्रीय के प्रदेश संयुक्त सचिव डॉ. गंगाश्याम गुर्जर ने आभार जताया। कार्यक्रम में शहर के दोनों राजकीय महाविद्यालयों के रूकटा राष्ट्रीय सदस्यों ने भाग लिया।

हि.प्र. में शाश्वत जीवन मूल्यों पर आयोजित जिला स्तरीय कार्यशालाएं

हिमाचल प्रदेश में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उत्तर क्षेत्र प्रमुख श्री जगदीश कौशिक के 3 दिवसीय प्रवास के समय उन के साथ हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ के प्रान्ताध्यक्ष व राष्ट्रीय अंकेक्षक श्री पवन मिश्रा रहे। इस प्रवास के समय 21 दिसम्बर 2014 को सुन्दर नगर जिला मण्डी की कार्यशाला में श्री भगत चन्देल जिला मन्त्री ने मंच संचालन, श्री दर्शन लाल जिला अध्यक्ष ने आए हुए अतिथियों का स्वागत तथा शाश्वत जीवन मूल्य की कार्यशाला में करणीय क्या है? विषय पर प्रकाश डाला। पवन मिश्रा, प्रान्ताध्यक्ष मुख्य वक्ता रहे तथा श्री जगदीश कौशिक इस कार्यशाला के मुख्यातिथि रहे। 22 दिसम्बर 2014 को सुन्नी में जिला शिमला की कार्यशाला में चार सत्र रहे। प्रथम सत्र का मंच संचालन श्री राजेन्द्र कृष्ण जिला मन्त्री ने किया, उद्घाटन सत्र में सर्वप्रथम दीप प्रज्ज्वलन के बाद सरस्वती माँ की वन्दना के तत्पश्चात् डॉ. मामराज पुण्डीर ने आए हुए अतिथियों का स्वागत तथा श्री विनोद सूद ने संगठन परिचय दिया। कार्यक्रम संयोजक श्री हेमराज ने अभियान पर प्रकाश डाला। द्वितीय सत्र में श्री जितेन्द्र कार्यक्रम सहसंयोजक ने मंच संचालन किया तथा श्री

पवन मिश्रा प्रान्ताध्यक्ष ने विषय रखा। इस सत्र की अध्यक्षता श्री भगत राम ने की। तृतीय सत्र में श्री सुखदेव ने मंच संचालन किया तथा श्री सेवक राम जिला कार्यवाह ने विषय रखा। श्री रिखीराम कौंडल ने अध्यक्षता की। समापन सत्र का मंच संचालन डॉ. ब्रह्मानन्द ने किया तथा कार्यक्रम के मुख्यातिथि ने अपना उद्बोधन रखा। कार्यक्रम के अन्त में सुश्री ललिता ने आए हुए अतिथियों का धन्यवाद किया।

23 दिसम्बर 2014 को जिला सोलन की कार्यशाला के उद्घाटन सत्र का मंच संचालन श्री भीष्म ने किया। दीप प्रज्ज्वलन, सरस्वती माँ की वन्दना की गई। श्री सूच्चा सिंह ने आए हुए अतिथियों का स्वागत किया। श्री विनोद सूद ने संगठन परिचय रखा। श्री जयशंकर प्रदेश कोषाध्यक्ष ने अभियान का परिचय रखा। द्वितीय सत्र का मंच संचालन डॉ. संजीव ने किया। इस सत्र में विषय श्री पवन मिश्रा प्रान्ताध्यक्ष ने रखा। इस सत्र की अध्यक्षता श्री शालीग्राम ने की। तृतीय सत्र का मंच संचालन श्री प्रेम ने किया। विषय प्रवर्तक श्री राजेन्द्र जिला कार्यवाह रहे। इस सत्र की अध्यक्षता श्री रूप राम प्रधानाचार्य ने की। समापन सत्र का मंच संचालन श्री मनु महेश जिलामन्त्री ने किया। कार्यक्रम

के मुख्यातिथि श्री जगदीश चन्द्र कौशिक ने अपना उद्बोधन रखा। कार्यक्रम के अन्त में श्री मस्तराम जिला सोलन संगठन मन्त्री ने आए हुए अतिथियों का धन्यवाद किया। इन कार्यशालाओं में शाश्वत जीवन मूल्यों पर विषय रखते हुए श्री पवन मिश्रा प्रान्ताध्यक्ष व राष्ट्रीय अंकेक्षक ने कहा कि जब शाश्वत जीवन मूल्यों की चर्चा होती है तो शायद चरित्र, संस्कार व धर्म की बात होती है। नियमों का पालन संस्कार तथा संस्कार को व्यवहार में लाना चरित्र है। धर्म की दस मर्यादाएं हैं। दान, परित्रान, सेवा, सतवादिता, प्रियवादिता, हितवादिता, सन्तोष, स्वाध्याय, विश्व हितचिन्तन, श्रद्धा। उत्तर क्षेत्र प्रमुख श्री जगदीश चन्द्र कौशिक ने अपने प्रवास के समय विभिन्न कार्यशालाओं में अपने सम्बोधन में कहा कि भाषण देने की तुलना में आवश्यक होगा कि हम इन शाश्वत जीवन मूल्यों को अपने जीवन में धारण करें। अध्यापक बोलने की तुलना में मूल्यों को अपने जीवन में धारण कर बच्चों को प्रेरित करें। उन्होंने कहा कि वर्तमान पीढ़ी सत्य, ईमानदारी, श्रद्धा, प्रेम के अर्थ को भूल चुकी है। मूल्यों का हास तेजी से हो रहा है। यही कारण है कि आज गैंग रेप, आतंकवाद व भ्रष्टाचार जैसी घटनाएं बढ़ी हैं।

रुक्टा राष्ट्रीय की पाली में एक दिवसीय कार्यशाला सम्पन्न

शिक्षक देश के निर्माण में निभाएं अहम भूमिका : पारख

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की प्रेरणा से पाली शहर के बांगड़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय में 19 दिसम्बर 2014 को जोधपुर संभाग की एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन हुआ। कार्यशाला को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि विधायक ज्ञानचंद पारख ने शिक्षकों को आज के आलोच्य समय में देश के निर्माण व देश की युवा पीढ़ी को

आगे बढ़ाने में अपनी अग्रणी भूमिका निभाने का आह्वान किया।

पारख ने कहा कि आज जरूरत है कि हम सभी मिलकर समाज में जीवन के शाश्वत मूल्यों तथा सामाजिक समरसता को मजबूत बनाने के लिए हरसंभव प्रयास करें।

समारोह में रुक्टा राष्ट्रीय के प्रदेश महामंत्री डॉ. नारायणलाल गुप्ता ने मुख्य वक्ता

के रूप में कहा कि शाश्वत जीवन मूल्य भारतीय संस्कृति के आधार हैं। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संतुलित विकास हमारा ध्येय होना चाहिए। समारोह को शैक्षिक प्रकोष्ठ के प्रदेश संयोजक डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, कॉलेज प्राचार्या डॉ. सुशीला राठी ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम के अंत में वरिष्ठ संकाय सदस्य प्रो. पी.एम. संचेती ने सभी का आभार जताया।

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का उदयपुर में विशाल धरना पदोन्नति नहीं होने से शिक्षकों में गहरा आक्रोश

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का संभाग स्तरीय विशाल धरना 31 दिसम्बर 2014 को शिक्षा उपनिदेशक माध्यमिक कार्यालय, उदयपुर के समक्ष हुआ। शिक्षक पदोन्नति नहीं होने पर जर्बदस्त आक्रोशित थे। शिक्षा उपनिदेशक भरत मेहता को स्वयं धरना स्थल पर आना पड़ा। उन्होंने मात्र उदयपुर संभाग में ही तृतीय वेतन श्रृंखला शिक्षकों की पदोन्नति नहीं हो पाने के कारणों का स्पष्टीकरण दिया। उन्होंने 10 जनवरी तक पदोन्नति प्रक्रिया पूर्ण करने की बात कही साथ ही बताया कि शारीरिक शिक्षकों तथा मंत्रालयिक कर्मचारियों की स्थाई पात्रता सूची जारी हो चुकी है। इनकी पदोन्नति अध्यापकों के बाद होगी।

धरने पर राजसमन्द, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, चित्तौड़, प्रतापगढ़ तथा उदयपुर जिले के लगभग 500 शिक्षक प्रतिनिधि उपस्थित थे तथा वे निरन्तर नारेबाजी करते हुए प्रदर्शन कर रहे थे।

इस अवसर पर प्रदेश वरिष्ठ उपाध्यक्ष अरविन्द व्यास ने भ्रष्ट लिपिकों को हटाने की मांग करते हुए शिक्षकों से आह्वान किया कि वे संगठन की शक्ति का परिचय दें।

वरिष्ठ शिक्षक नेता शंकर वया ने ज्ञापन वाचन किया तथा शिक्षकों को संघर्षरत रहने की बात कही। इस अवसर पर प्रदेश उपाध्यक्ष भौमसिंह चुण्डावत, प्रदेश संयुक्त मंत्री राजकमल लौहार, प्रदेश की महिला मंत्री वन्दना शर्मा, प्रदेश के नटवरलाल पांचाल, देवीलाल पाटीदार, रतन डामोर, कृष्णकान्त पानेरी तथा उदयपुर जिलाध्यक्ष जगदीश उपाध्याय, राजसमन्द के नारायणसिंह चुण्डावत, डूंगरपुर के प्रवीण जैन, बांसवाड़ा के गम्भीरचन्द पाटीदार, चित्तौड़ के रामलक्ष्मण त्रिपाठी तथा प्रतापगढ़ के जिलाध्यक्ष रमणलाल गहलोत ने भी सम्बोधित किया। संयोजन राजकमल लौहार ने किया।

राजस्थान में मात्र उदयपुर संभाग ही ऐसा है जहां पर शिक्षकों व शारीरिक शिक्षकों को तु.वे.श्रु. से द्वि.वे.श्रु. में पदोन्नति नहीं हो

पाई है। इसके कारणों की तह में जाकर कारणों को देखना बहुत आवश्यक है। मात्र एक दो माह की व्यवस्था व कार्य को देखने से इस संभाग के कार्यालय में सुधार नहीं होगा और नहीं न्याय हो सकेगा। दिये गये ज्ञापन में मांग निम्नानुसार है:-

1. संभाग के तु.वे.श्रु. से द्वि.वे.श्रु. शिक्षकों व शारीरिक शिक्षकों के पदोन्नति आदेश शीघ्र दिलाये जावें।
2. अन्य श्रेणी जैसे वाणिज्य, ड्राईंग, कला, गृहविज्ञान, कृषि आदि की पदोन्नति के लिए डीपीसी के आदेश शिक्षा निदेशालय से शीघ्र दिलाये जावें।
3. लोक सेवा आयोग से चयनित शिक्षकों की सभी विषयों की शेष नियुक्ति के आदेश भी शीघ्र दिलाई जावें।
4. अन्य संभागों से उदयपुर संभाग में किये गये नियुक्त शिक्षकों को अपने गृह जिले में लगाये जावे।
5. उदयपुर जिले में सीधी भर्ती ही में नियुक्त अपंग, दृष्टिहीन शिक्षकों को तत्काल गृह जिले के स्वयं के ब्लॉक में शीघ्र ही लगाये जावें।
6. वर्तमान में पदोन्नत शिक्षकों को तथा उदयपुर संभाग में पदोन्नत किये जाने वाले शिक्षकों को अपने-अपने संभाग में लगाये जावे तथा लगाये जा चुके शिक्षकों को अपने-अपने संभाग में ही पदोन्नति दी जावे।
7. माह सितम्बर, अक्टूबर 2014 में ऐसे शिक्षकों को भी स्थानान्तरित कर दिया गया जिनकी सेवानिवृत्ति में मात्र 2 वर्ष से कम थे ऐसे शिक्षकों के स्थानान्तरण निरस्त कराये जायें।
8. दि. 27-7-2013 के आदेशों द्वारा जिन शिक्षकों को तु.वे.श्रु. से द्वि.वे.श्रु. में पदोन्नति दी गई थी। उनमें आदेश की प्रतीक्षा में वंचित शिक्षकों को पदस्थापन कराये जावे। स्मरण रहे कि उन पदस्थापनों में लाखों की हेराफेरी की आशंका की शिकायत

की गई थी। आदेश की प्रतीक्षा वाले शिक्षक भी उसी का हिस्सा है। शिकायत के बाद भी जांच नहीं हो पाई थी। वर्तमान में सड़ी गली व्यवस्था भी उसी का भाग है। अतः जांच कराई जावे। विभाग की व्यवस्था का यह आलम है कि डेढ़ वर्ष बाद तक भी प्रतीक्षा वालों के कई पदस्थापना नहीं हो पायी है। ऐसे 200-250 तक शिक्षक थे।

9. संभाग के ही एक जिले से दूसरे जिले में स्थानान्तरित होकर आये शिक्षकों की वरीयता नहीं बदली जाकर ऐसे शिक्षक जो भी पदोन्नति से वंचित है, लाभ दिलाया जावे।
10. शिक्षकों के स्थायीकरण प्रकरणों के लिए जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय से शिक्षा उपनिदेशक कार्यालय तक पहुंचने व शिक्षा उपनिदेशक कार्यालय से स्थायीकरण आदेश निकाल कर चप्पा करने व सम्बन्धित तक पहुंचाने की अवधि तय की जावे।
11. स्थानान्तरण के लिए वर्तमान में लगभग 15 वर्षों से चल रही बाडेवन्दी की व्यवस्था को बदला जावे। कारण कि इस व्यवस्था में भी प्रतिवर्ष विभाग द्वारा नियुक्त जांचकर्ताओं के बाद भी कई खामियां सामने आती हैं। जिसका खामियाजा अभी अभी की उदयपुर संभाग में की गई नियुक्तियों में सामने आया है जिसका दण्ड पूर्व कार्यवाहक शिक्षा उपनिदेशक श्रीमती कृष्णा चैहान को भुगतना पड़ा है जबकि उनका कोई दोष नहीं था। अधिकारियों पर विश्वास किया जावें। गलत काम करने वालों को सख्त सजा दी जावे। स्मरण रहे कि श्रीमती ने मात्र 35 दिन कार्य किया था और वह भी पूर्व से चली आ रही सड़ी गली व्यवस्था के बीच।
12. स्थानान्तरण नियम बनाकर स्थायी व्यवस्था कायम की जावे। इसमें शिक्षक संगठनों की राय ली जावें।